राम और कृष्ण

कि० घ० मशरूवाला

अनुवादक
काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर,
अहमदाबाद – १४

प्रकाशकका निवेदन

स्व० श्री किशोरलाल मशरूवालाकी 'राम और कृष्ण' नामक गुजराती पुस्तकके नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित दूसरे संशोधित और संवर्धित संस्करणका यह हिन्दी अनुवाद है। गुजराती जनतामें इस पुस्तकका काफी प्रचार और प्रसार हुआ है। आशा है, हिन्दी-भाषी जनतामें भी इसका अच्छा स्वागत होगा।

श्री किशोरलाल मशरूवाला हमारे देशके एक महान विचारक और साधक थे। उनके समान धर्म-परायण पुरुष इस देशके दो युग-पुरुषों — राम और कृष्ण — की आराधना किस दृष्टिसे करते थे, यह जानने और समझने योग्य बात है। विद्यालयोंके विद्यार्थियोंके लिए इतर वाचनकी दृष्टिसे तथा नव-शिक्षित प्रौढ़ोंके लिए विशेष वाचनकी दृष्टिसे यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। साधारण पाठकोंके लिए भी यह पढ़ने योग्य बढ़िया सामग्री। धर्मज्ञान-सम्बन्धी सामान्य वाचनके रूपमें भी इसकी उपयोगिता निर्विवाद रहेगी।

१०-६-'५५

२१८
जीवनी

प्रस्तावना*

इस छोटीसी पुस्तक-मालामें जगतके कुछ अवतारी पुरुषोंका संक्षिप्त जीवन-परिचय देनेका विचार है। इस परिचयके लिए जो दृष्टिकोण सामने रखा गया है, उसके सबबमें दो बातें लिखना जरूरी है।

अवतारी पुरुषका अर्थ क्या है? हिन्दुओंका खयाल है कि जब पृथ्वी पर धर्मका लोप होता है, अधर्म बढ जाता है, असुरोंके उपद्रवसे समाज पीडा पाता है, साधुताका तिरस्कार किया जाता है, निर्बलकी रक्षा नहीं होती, तब परमात्माका अवतार प्रकट होता है। लेकिन हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि अवतार किस तरह प्रकट होते हैं, प्रकट होने पर किन लक्षणोंसे उन्हें पहचाना जाता है और उन्हें पहचानकर या उनकी भक्ति करके हमें अपने जीवनमें किस प्रकारका परिवर्तन करना चाहिये।

सर्वत्र एक ही परमात्माकी शक्ति — सत्ता — काम कर रही है। क्या मुझमें और क्या आपमें, सर्वत्र एक ही प्रभु व्याप्त है। उसीकी शक्तिसे सब चलते-फिरते और हिलते-डोलते हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईशु आदिमें भी परमात्माकी यही शक्ति विद्यमान थी। तब हममें और राम, कृष्ण आदिमें अन्तर क्या है? वे भी मेरे और आपके-जैसे आदमी ही दिखाई पड़ते थे, उन्हें भी मेरी और आपकी तरह दुःख सहने पड़े थे और पुरुषार्थ करना पड़ा था। फिर भी हम उन्हें अवतार क्यों कहते हैं? हजारों वर्षोंके बाद भी हम उन्हें अब तक क्यों पूजते हैं?

वेदका एक वचन है: 'आत्मा सत्यकाम — सत्यसंकल्प है।' इसका अर्थ यह होता है कि हम जो भी सोचें या चाहें, वही प्राप्त

* गुजराती पुस्तककी पहली आवृत्तिकी प्रस्तावना।

कर सकते हैं। जिस शक्तिके कारण हमारी कामनायें सिद्ध होती हैं, उसीको हम परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म कहते हैं। जानमें या अन-जानमें भी इसी परमात्माकी शक्तिका आलम्बन — शरण — आश्रय लेकर हमने अपनी वर्तमान स्थिति प्राप्त की है; और भविष्यमें जो स्थिति हम प्राप्त करेंगे, वह भी इसी शक्तिके आलम्बनसे करेंगे। राम-कृष्णने भी इसी शक्तिके आलम्बनसे सर्वेश्वरपद — अवतारपद — प्राप्त किया था; आगे जो मनुष्य-जातिके पूजनीय अवतार होंगे, वे भी इसी शक्तिका आश्रय लेकर होंगे। हममें और उनमें अंतर केवल यही है कि हम उस शक्तिका उपयोग मूढ़तापूर्वक, अज्ञानपूर्वक करते हैं; उन्होंने बुद्धिपूर्वक उसका अवलम्बन लिया था।

दूसरा अन्तर यह है कि हम अपनी क्षुद्र वासनाओंकी तृप्तिके लिए परमात्माकी शक्तिका उपयोग करते हैं। अवतारी पुरुषोंकी आकांक्षायें, उनके आशय महान और उदार होते हैं; वे उन्हींके लिए आत्मबलका आश्रय लेते हैं।

तीसरा अन्तर यह है कि जनसमाज महापुरुषोंके वचनोंका अनुसरण करनेवाला और उनके आश्रयमें एवं उनके प्रति रही अपनी श्रद्धामें अपना उद्धार माननेवाला होता है। प्राचीन शास्त्र ही उसके आधार होते हैं। किन्तु अवतारी पुरुष केवल शास्त्रोंका अनुसरण नहीं करते; वे शास्त्रोंको स्वयं बनाते हैं और उनमें परिवर्तन भी करते हैं। उनके वचन ही शास्त्र बन जाते हैं और उनके आचरण ही दूसरोंके लिए दीपस्तम्भका काम देते हैं। उन्होंने परम तत्त्वको जान लिया है। अपने अंतःकरणको उन्होंने शुद्ध कर लिया है। ऐसे ज्ञानवान, विवेक-वान और शुद्धचित्त लोगोंको जो विचार सूझते हैं, जो कुछ आचरणीय प्रतीत होता है, वही सच्छास्त्र और वही सद्धर्म बन जाता है। दूसरे कोई शास्त्र न तो उन्हें बांध सकते हैं, न उनके निर्णयमें अन्तर पैदा कर सकते हैं।

यदि हम अपने आशयोंको उदार बनायें, अपनी आकांक्षाओंको करें और ज्ञानपूर्वक प्रभुकी शक्तिका आश्रय लें, तो हम और

अवतार माने जानेवाले पुरुष तत्त्वतः भिन्न नहीं हैं। घरमें बिजलीकी शक्ति लगी हुई है; जिस तरह हम उसका उपयोग एक क्षुद्र घण्टी बजानेमें कर सकते हैं, उसी तरह उसके द्वारा सारे घरको दीपावलीसे सुशोभित भी कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रभु हममें से प्रत्येकके हृदयमें विराजमान है, हम चाहें तो उसकी सत्ता द्वारा अपनी एक क्षुद्र वासनाको तृप्त कर सकते हैं, और चाहें तो महान एवं चारित्र्यवान बनकर संसारसे तर सकते हैं तथा दूसरोंको तरनेमें मदद कर सकते हैं।

अवतारी पुरुषोंने अपनी रग-रगमें व्याप्त परमात्माके बलसे पवित्र, पराक्रमी और परदुःख-भंजन बनना चाहा। उन्होंने उस बलके द्वारा सुख-दुःखसे परे, करुणामय, वैराग्यवान, ज्ञानवान और प्राणिमात्रका मित्र बनना चाहा। अपने स्वार्थ-त्यागके कारण, इन्द्रिय-विजयके कारण, मनके संयमके कारण, चित्तकी पवित्रताके कारण, करुणाकी अतिशयताके कारण, प्राणिमात्रके प्रति अतिशय प्रेमके कारण, दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिए अपनी समस्त शक्तियों खर्च करनेकी निरंतर तत्परताके कारण, अपनी अतिशय कर्तव्य-परायणताके कारण, निष्कामताके कारण, अनासक्तिके कारण, निरभिमानताके कारण और सेवा द्वारा गुरुजनों-की कृपा प्राप्त कर लेनेके कारण वे अवतार माने गये, मनुष्यमात्रके पूज्य बने।

यदि चाहें तो हम भी इसी तरह पवित्र बन सकते हैं, ऐसे कर्तव्य-परायण हो सकते हैं, इतनी करुणावृत्ति विकसित कर सकते हैं, ऐसे निष्काम, अनासक्त और निरभिमान बन सकते हैं। अवतारोंकी भक्ति करनेका हेतु भी यही है कि वैसे बननेका हमारा प्रयत्न निरन्तर चालू रहे। जिस हद तक हम उनके जैसे बनते हैं, कह सकते हैं कि उस हद तक हम उनके निकट पहुंचे हैं — हमने उनके अक्षरधामको प्राप्त किया है। यदि हम उनके जैसे बननेका प्रयत्न नहीं करते, तो उनका नाम-स्मरण करना हमारे लिए व्यर्थ है और ऐसे नाम-स्मरणसे उनके पास तक पहुंचनेकी आशा रखना भी व्यर्थ है।

इस जीवन-परिचयको पढ़कर पाठकोंका अवतारोंको पूजने लगना ही पर्याप्त नहीं है। इस पुस्तकको पढ़नेका श्रम तो तभी सफल हुआ माना जायेगा, जब वे अपने अंदर अवतारोंको परखनेकी शक्ति उत्पन्न करेंगे और वैसे बननेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे।

अंतमें एक वाक्य लिखना जरूरी है। मैं यह नहीं कह सकता कि इसमें जो कुछ नया है, वह पहली बार मुझे ही सूझा है। अगर यह कहूं कि मेरे जीवन-ध्येयको तथा उपासनाके मेरे दृष्टिकोणको बदल डालनेवाले और मुझे अंधकारसे प्रकाशमें ले आनेवाले मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ही मुझे निमित्त बनाकर यह सब कहते हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। फिर भी इसमें जो त्रुटियां हैं, वे मेरे ही विचारोंकी और ग्रहण-शक्तिकी समझी जानी चाहिए।

'राम और कृष्ण' के लेखोंके लिए मैं श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य लिखित इन अवतारोंके चरित्रोंके गुजराती अनुवादकोंका और बुद्धदेवके चरित्रके लिए श्री धर्मानन्द कोसम्बीकी 'बुद्धलीला-सार-संग्रह' और 'बुद्ध, धर्म और संघ' का ऋणी हूं। महावीरकी वस्तु बहुत-कुछ हेमाचार्य-कृत 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष' पर आधारित है। और ईसा के लिए मैंने 'बाइबल' का उपयोग किया है।

मार्गशीर्ष कृष्ण ११, . किशोरलाल घ० मशरूवाला
संवत् १९७९
(सन् १९२३)

२

दूसरे संस्करणके स्पष्टीकरणसे

इस पुस्तककी दूसरी आवृत्ति निकालनेके लिए मैं अपनी अनुमति देनेमें आनाकानी किया करता था। क्योंकि यद्यपि पुस्तकके सम्बन्धमें प्रकाशित समालोचनायें सभी अनुकूल थीं, तथापि गांधीजीके सम्बन्धमें मेरे साथी कहे जा सकनेवाले एक मित्रने इन पुस्तकोंका बड़ी बारीकीसे अध्ययन किया है और इन पर अपनी आपत्तियोंकी एक सूची मुझे सौंपी है। उनकी राय यह बनी है कि मैंने इन पुस्तकोंमें "रामकी केवल विडम्बना की है", कृष्णका तो कचूमर ही निकाल डाला है" और 'बुद्धके साथ ज्यादती करनेमें भी कमी नहीं रखी।" चूंकि वे स्वयं जैन नहीं थे, इसलिए 'महावीर' के बारेमें टीका करनेमें असमर्थ थे। किन्तु एक-दो जैन मित्रोंने महावीरके मेरे आलेखन पर अपना तीव्र असन्तोष व्यक्त किया था। 'ईसु ख्रिस्त' के सम्बन्धमें दो गुजराती ख्रिस्तियोंकी ओरसे भी आपत्तियां आई हैं। यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि 'सहजानन्द स्वामी' वाली पुस्तक सम्प्रदायमें अमान्य-सी हुई है। इस स्थितिमें मैंने यह अनुभव किया कि पुस्तकके फिर प्रकाशित होनेसे पहले मुझे टीकाकारोंकी दृष्टिसे इन पुस्तकों पर बार-बार विचार करना चाहिये और यह भी जानना चाहिये कि जिन्हें ये रुचिकर प्रतीत हुई हैं, उन्हें किन कारणोंसे रुचिकर लगी हैं। और इस दृष्टिसे आवश्यकता पड़ने पर दूसरी आवृत्तिमें मुझे सुधार करने चाहिये। इन कारणोंसे दूसरी आवृत्ति निकालनेके सम्बन्धमें मेरा उत्साह मन्द था, किन्तु भाई रणछोड़जी मिस्त्रीका आग्रह बराबर बना रहा। इसलिए अन्तमें उनकी इच्छाके वश होकर मुझे दूसरी आवृत्ति निकालनेकी अनुमति देनी पड़ी है।

चूंकि 'अनुमति दी है', इसलिए पुस्तकको फिर सुधारा भी है और इसके कुछ अंश दूसरी बार लिख डाले हैं। किन्तु मैं यह विश्वास नहीं दिला सकता कि जो सुधार किये हैं, उनसे मैं अपने टीकाकारोंको सन्तुष्ट कर सकूंगा। उलटे, इन जीवन-चरित्रोंके प्रतापी नायकोंके प्रति

जहां-जहां मेरा रुख पहली आवृत्तिमें अस्पष्ट रहा था, वहां-वहां अब वह अधिक स्पष्ट हुआ है।

नवजीवन प्रकाशन मंदिरने पहली आवृत्तिमें इस जीवन-चरित्र-मालाका नाम 'अवतार-लीला लेखमाला' रखा था और मैंने उसे रहने दिया था। किन्तु इस नामके औचित्यके बारेमें मेरे मनमें शंका थी ही। 'अवतार' शब्दके मूलमें सनातनी हिन्दूके मनमें जो एक विशिष्ट कल्पना पाई जाती है, वह कल्पना मुझे मान्य नहीं है। पहली आवृत्तिकी प्रस्तावना पढ़ते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि उक्त कल्पनाके साथ पुष्ट होनेवाली भ्रामक मान्यताको दूर कर देने पर भी राम-कृष्ण आदि महापुरुषोंके प्रति पूज्यभाव बनाये रखना इस पुस्तकका हेतु है। 'अवतार' शब्दके साथ 'लीला' शब्दका सम्बन्ध वैष्णव-सम्प्रदायोंमें विशेष प्रकारकी धारणा निर्माण करता है और मैंने यह अनुभव किया है कि 'लीला' शब्द अनर्थमूलक भी सिद्ध हुआ है। इस कारण 'अवतार-लीला लेखमाला' नाम मैंने छोड़ दिया है।

किन्तु अपनी मूल प्रस्तावनामें मैंने इन चरित्र-नायकोंके बारेमें 'अवतारी पुरुष' शब्दका उपयोग किया था, अतः संभव है कि उसीसे प्रेरित होकर प्रकाशकने 'अवतार-लीला लेखमाला' नाम रखा हो।... मराठी भाषामें 'अवतारी पुरुष' एक रूढ़ प्रयोग है और उसका अर्थ केवल विशेष विभूति-सम्पन्न पुरुष होता है; और इसी कारण वहां शिवाजी, रामदास, तुकाराम, एकनाथ, लोकमान्य तिलक आदिके समान कोई भी लोकोत्तर कल्याणकारी शक्ति प्रकट करनेवाला व्यक्ति 'अवतारी पुरुष' कहलाता है। इन शब्दोंका उपयोग करते समय मेरे मनमें यही कल्पना थी। लेकिन चूंकि गुजरातीमें ऐसा कोई शब्द-प्रयोग नहीं है, इसलिए थोड़ा घोटाला खड़ा हुआ है। अतएव इस आवृत्तिमें से यह शब्द-प्रयोग हटा दिया गया है।

[illegible] कह दूं कि इन संक्षिप्त चरित्रोंकी सच्ची उपयोगिता कितनी [illegible] कहा जा सकता कि इतिहास, पुराण अथवा बौद्ध-जैन- [illegible] का अभ्यास करके, समीक्षात्मक वृत्तिसे मैंने कोई

नया संशोधन किया है। इसके लिए तो पाठकोंको श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य अथवा श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय आदिकी विद्वत्तापूर्ण पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए। दूसरे, पवित्र-मानवोंके प्रति असाम्प्रदायिक दृष्टि रखते हुए भी नित्यके धार्मिक वाचनमें उपयोगी सिद्ध हो सकनेवाले अच्छे चरित्र उस ढंगसे अथवा विस्तारसे लिखे नहीं गये हैं। मैं मानता हूँ कि ऐसी पुस्तकोंकी आवश्यकता है। किन्तु इस बातको हाथमें लेनेके लिए जितना अध्ययन आवश्यक है, उसके लिए मैं समय या शक्ति प्राप्त कर सकूँगा, इसकी कोई संभावना नहीं दीखती। अतएव मेरी इस लेखमालाका हेतु इतना ही है

मनुष्य स्वभावसे ही किसी-न-किसीकी पूजा करता है। वह दूसरेको देवके रूपमें पूजता है, या दूसरा मनुष्य समझते हुए भी उसकी पूजा करता है। जिसको देवके रूपमें पूजता है, उन्हें वह अपनेसे भिन्न जातिका समझता है, जिन्हें मनुष्य मानकर पूजता है, उन्हें वह न्यूनाधिक अपने आदर्शके रूपमें पूजता है। राम-कृष्ण-बुद्ध-महावीर-ईसु आदिको भिन्न-भिन्न समाजोंके लोग देव बनाकर — अ-मानव बनाकर — पूजते रहे हैं। आज तककी हमारी रीति यह रही है कि हमने इन्हें आदर्श मानकर, इनके समान बननेकी उमंग रखकर और उसके लिए प्रयत्न करके अपना अभ्युदय करनेकी बात नहीं सोची, बल्कि उनका नामोच्चारण करके, उनमें उद्धारक-शक्तिका आरोपण करके और उसमें विश्वास रखकर अपनी उन्नति करनेका ध्यान रखा है। यह रीति कम या अधिक अन्धश्रद्धाकी — अर्थात् जहाँ तक बुद्धि न चले केवल वहाँ तक ही श्रद्धा रखनेकी नहीं है, बल्कि बुद्धिका विरोध करनेकी श्रद्धाकी है। ऐसी श्रद्धा विचारके सामने टिक नहीं सकती।

सभी सम्प्रदायोंके आचार्यों, साधुओं, पंडितों आदिके जीवन-कार्यका इतिहास ही इस बातमें समा गया है कि भिन्न-भिन्न महापुरुषोंमें इस देव-भावनाको अधिक दृढ़ बनानेका प्रयत्न किया जाय। इन्हींके परिणाम-स्वरूप चमत्कारोंकी, भूतकालमें हुई भविष्यवाणियोंकी और आनेवाले जमानेके लिए की गई और सत्य सिद्ध हुई आगाहियोंकी आख्यायिकायें रची गई हैं और उनका इतना अधिक विस्तार हो गया है कि

जीवन-चरित्रके सौमें से नव्वे या उससे भी अधिक पृष्ठ इसी चीजसे भरे मिलते हैं। साधारण लोगोंके मन पर इसका यह प्रभाव पड़ा है कि वे मनुष्यका मूल्य उसकी पवित्रता, लोकोत्तर शील-सम्पन्नता, दया आदि साधुओं और वीर पुरुषोंके गुणोंके कारण नहीं कर सकते, वल्कि उससे चमत्कारकी अपेक्षा रखते हैं और चमत्कार करनेकी शक्तिको महा-पुरुषका आवश्यक लक्षण समझते हैं। शिलाको अहल्या बनाने, गोवर्धनको छिगुनी अंगुली पर उठाने, सूर्यको आकाशमें रोके रखने, पानी पर चलने, एक टोकनी-भर रोटीसे हजारोंको जिमाने, मरनेके बाद मनुष्यको फिर सजीवन करने आदि-आदिके रूपमें प्रत्येक महापुरुषके चरित्रमें आने-वाली इन कथाओंके रचयिताओंने जनताको एक प्रकारका गलत दृष्टिकोण दे दिया है। इस तरहके चमत्कार कर दिखानेकी शक्ति साध्य हो तो भी केवल उसीके कारण कोई मनुष्य महापुरुष कहलाने योग्य नहीं माना जाना चाहिये। महापुरुषोंकी चमत्कार करनेकी शक्ति' अथवा 'अरेबियन नाइट्स'–जैसी पुस्तकोंमें दी गई जादूगरोंकी शक्ति ——इन दोनोंकी कीमत मनुष्यताकी दृष्टिसे एकसी ही है। ऐसी शक्तिके कारण कोई पूजापात्र नहीं बनना चाहिये। रामने शिलाको अहल्या बनाया अथवा पानी पर पत्थर तैराये इस वातको निकाल डालें, कृष्णने केवल मानुषी शक्तिके सहारे ही अपना जीवन बिताया, ऐसा कहें और यह मानें कि ईशुने एक भी चमत्कार नहीं दिखाया, तो भी राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईशु आदि पुरुष किस कारण मानव-जातिके लिए पूजनीय हैं, इस दृष्टिसे इन चरित्रोंको लिखनेका मैंने प्रयत्न किया है। संभव है कि कुछ लोगोंको यह रुचिकर न हो; किन्तु मुझे विश्वास है कि यही सच्ची दृष्टि है। इसी कारण मैंने इस रीति-को न छोड़नेका आग्रह रखा है।

महापुरुषोंको निरखनेका यह दृष्टिकोण जिन्हें स्वीकार हो, उन्हींके लिए यह पुस्तक है।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

[illegible]

अनुक्रमणिका

राम

सुन्दरकाण्ड

युद्धकाण्ड

उत्तरकाण्ड

टिप्पणियां ५

कृष्ण

गोकुल-पर्व

मथुरा-पर्व

द्वारिका-पर्व

पाण्डव-पर्व

द्यूत-पर्व

युद्ध-पर्व

सुन्दरकाण्ड

युद्धकाण्ड

उत्तरकाण्ड

टिप्पणियां

कृष्ण

गोकुल-पर्व

उत्तर-पर्व

टिप्पणियां

राम-कृष्ण

[समालोचना]

श्री रामचन्द्रके प्रतापी चरित्रसे कदाचित् ही कोई हिन्दू अपरिचित हो सकता है। रामायणकी रचना हुए कितनी सदियां बीत चुकी हैं, आज इसका पता लगाना मुश्किल है। इस बातका निश्चय करना भी लगभग असम्भव है कि रामायणमें ऐतिहासिक तत्त्व कितना है और कवि द्वारा रचित कथाका अंश कितना है? और अब इसके निश्चयका कोई विशेष उपयोग भी नहीं रहा है। कारण यह है कि वाल्मीकिने और उनके बादके सैंकड़ों कवियोंने अलग-अलग रीतिसे राम-कथाको लोक-हृदयमें इतना गहरा उतार दिया है और इतना सत्यवत् बना दिया है कि सच्ची घटनाएं भी उनसे अधिक सत्यवत् शायद ही लग सकें। फिर भी हमें यह याद रखना चाहिए कि रामायण एक प्राचीन काव्य है। इसलिए अद्‌भुत रसकी सृष्टिके विचारसे उसमें अमानुषी — दैवी — चमत्कारकी बातें सहज ही आ गई हैं। ये अद्‌भुत बातें कथा-तन्तुके साथ इस तरह गुंथ गई हैं कि इन्हें बिलकुल छोड़कर रामायणकी कथा कहना सम्भव नहीं। इसके अलावा, बादके कवियोंने, और ईश्वरके अवतारके रूपमें रामकी प्रतिष्ठा होनेके बाद, भक्तिमार्गी कवियोंने राम-कथामें चमत्कार और अद्‌भुत रसका इतना विस्तार किया है कि वाल्मीकिकी मूल कथा उसके नीचे दब-सी गई है। इस

राम-चरित्र

श्री रामचन्द्रके प्रतापी चरित्रसे कदाचित् ही कोई हिन्दू अपरिचित हो सकता है । रामायणकी रचना हुए कितनी

राम-चरित्र

सदियां बीत चुकी हैं, आज २८ लगाना मुश्किल है । इस बातका.. करना भी लगभग असम्भव है कि राम. ऐतिहासिक तत्त्व कितना है और कवि द्वारा रचित कथाका अंग कितना है? और अब इसके निश्चयका कोई विशेष उपयोग भी नहीं रहा है । कारण यह है कि वाल्मीकिने और उनके बादके सैकड़ों कवियोंने अलग-अलग रीतिसे राम-कथाको लोक-हृदयमें इतना गहरा उतार दिया है और इतना सत्यवत् बना दिया है कि सच्ची घटनाएं भी उनसे अधिक सत्यवत् शायद ही लग सकें । फिर भी हमें यह याद रखना चाहिए कि रामायण एक प्राचीन काव्य है । इसलिए अद्भुत रसकी सृष्टिके विचारसे उसमें अमानुषी — दैवी — चमत्कारकी बातें सहज ही आ गई हैं । ये अद्भुत बातें कथा-तन्तुके साथ इस तरह गुंथ गई हैं कि इन्हें बिलकुल छोड़कर रामायणकी कथा कहना सम्भव नहीं । इसके अलावा, बादके कवियोंने, और ईश्वरके अवतारके रूपमें रामकी प्रतिष्ठा होनेके बाद, भक्तिमार्गी कवियोंने राम-कथामें चमत्कार और अद्भुत रसका इतना विस्तार किया है कि वाल्मीकिकी मूल कथा उसके नीचे दब-सी गई है । इस

निबन्धमें उन बातोंको छोड़ दिया गया है, जिनका कथाके प्रवाहके साथ सम्बन्ध नहीं है। रामके चरित्रोंको अति-प्राकृत — दैवी शक्ति-सम्पन्न — दिखानेके लिए जो बातें लिखी गई-सी लगीं, उन्हें छोड़ दिया है। फिर भी अद्‌भुत रसकी कुछ बातें टाली नहीं जा सकी हैं। उन्हें निकालनेके लिए तो एक नये रामकी ही रचना करनी पड़े। पाठकोंको चाहिये कि वे इन बातोंको 'उपन्यास' से अधिक महत्त्व न दें। इतना छोड़ देनेके बाद मनुष्यताके और उत्तम पुरुषके नाना प्रकारके आदर्शोंको प्रकट करनेवाले इस काव्यमें से राम-चरित्र किस प्रकार प्रकट होता है, उसी दृष्टिसे यह छोटा-सा चरित्र लिखा गया है।

राम-महिमा

२. अयोध्या-जैसे एक छोटे-से जिलेके अधिपतिकी तुलनामें भारतमें अनेक बड़े-बड़े चक्रवर्ती और पराक्रमी राजा हो चुके हैं। फिर भी हिन्दू-हृदयमें रामका यश और उनके प्रति पाई जानेवाली भक्ति आज भी इतनी उमड़ती रहती है, मानो राम-चरित अभी कलकी ही कोई घटना हो। हो सकता है कि आजके राक्षस-जैसे, एक विशाल ब्रिटिश साम्राज्यके सिंहासन पर बैठनेवाले शाहंशाहको भी तुच्छ समझनेवाले सम्राट् किसी समय इस [illegible] पैदा हों और वे कालकी अनन्ततामें लीन हो जायें; [illegible] है कि उनके समयमें उनके पैरों तले दबी हुई [illegible] -जयकार भी करे। फिर भी यह सम्भव है [illegible] चन्द्रकी जय' के घोषको भुलाने और उस जयकारमें [illegible] के चिरंजीव यश और अनुचित भक्तिको हटानेमें

कोई महीपति समर्थ न हो। हो सकता है कि कोई समूचे संसारका सम्राट् बन जाये; रावणके राज्यसे भी अधिक महान ब्रिटिश साम्राज्यको मिट्टीमें मिलानेवाला कोई पराक्रमी पुरुष भूतल पर पैदा हो जाये; और फिर भी यह बिलकुल सम्भव है कि वह राजा रामके यशको न पा सके। रामको जीतनेवाला तो रामका कोई उपासक ही होगा। रामको वही जीतेगा, जो पूरी तरह रामके उदार चरित्रोंको अपना आदर्श बनायेगा, तदनुसार अपना जीवन ढालेगा और इस तरह राम-रूप बनकर रहेगा।

जन्म

३. मालूम होता है कि भारतवर्षके क्षत्रियोंमें इक्ष्वाकु[1]-कुल अत्यन्त प्रतापी हो चुका है। हिन्दुस्तानकी जनता जिन प्रतापी राजाओंकी कीर्तिका गान करती है, उनमें से अनेकोंकी वंश-परम्पराको इक्ष्वाकु-कुलके साथ जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि सगर,[2] दिलीप,[2] भगीरथ,[2]

---

१ सूर्यवंशी क्षत्रियोंका आदि-पुरुष। कहा जाता है कि विवस्वत् (सूर्य) का पुत्र मनु और मनुका पुत्र इक्ष्वाकु था। गीताके चौथे अध्यायके पहले श्लोकमें जिन विवस्वान् और मनुका नाम आता है वे ये ही हैं। आगे चलकर इक्ष्वाकु-वंशकी कई शाखायें हो गईं। रामका रघुकुल उन्हींमें से एक है। रघुके वंशज राघव कहलाये। इसीलिए रामको राघव, रघुपति आदि उपनामोंसे याद किया जाता है।

२. सगर, दिलीप, भगीरथ — ये तीनों राघवोंके पूर्वज हैं। इन्होंने वर्षों तक प्रचण्ड प्रयत्न करके गंगाको भारतमें प्रवाहित किया। इनमें सबसे महान और सफल प्रयत्न भगीरथ राजाका रहा। इसी कारण 'भगीरथ' शब्द बहुत बड़े या प्रचण्डके अर्थमें 'प्रयत्न' के विशेषणके रूपमें प्रयुक्त होता है।

हरिश्चन्द्र,[1] बुद्ध,[2] महावीर[2] आदि सब इक्ष्वाकु-कुलके थे।

४. कोसल प्रान्त — अर्थात् अयोध्याके आसपासके प्रदेशमें दीर्घ काल तक रघुवंशी राजाओंका राज्य रहा। उन्हींमें दशरथ नामके एक राजा हो गये। उनके कौसल्या,[3] सुमित्रा और कैकेयी[3] नामकी रानियां थीं। दशरथके ठेठ बड़ी उमरमें चार पुत्र हुए। बड़े श्रीराम कौसल्याके गर्भसे, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राके उदरसे और भरत कैकेयीकी कोखसे जन्मे। रामका जन्म चैत्र सुदी नवमीके दिन दोपहरको मनाया जाता है। माना यह जाता है कि इसके बाद एकआध दिनमें भरतका जन्म हुआ और भरतके जन्मके एकआध दिन बाद लक्ष्मण और शत्रुघ्नका जन्म जुड़वां भाइयोंके रूपमें हुआ। चारों भाइयोंकी उमरमें नाममात्रका ही अन्तर था, फिर भी इतने कम समयके अन्तरसे पैदा हुए बड़े भाईके प्रति छोटोंको पूर्ण आज्ञा-पालक बनकर बरतना चाहिये, इसकी शिक्षा उन्हें आरम्भसे ही दी गई थी। बालकके जन्मकी कोई आशा न रह जानेसे जो वृद्ध पिता

---

१. हरिश्चन्द्र — सत्यवादी। रघुवंशी क्षत्रियोंका यह कुलधर्म माना गया है कि पराक्रममें पीछे नहीं रहेंगे और एक बार की हुई प्रतिज्ञाको प्राण जाने पर भी नहीं तोड़ेंगे। 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय बरु वचन न जाई॥' (तुलसीदास)

२. बुद्ध, महावीर — यह माना जाता है कि इक्ष्वाकु-कुलकी शाखा [illegible] दूसरी दो शाखाओंमें इन महापुरुषोंका जन्म हुआ था।

३. [illegible], कैकेयी — अर्थात् कोसल और कैकेय प्रान्तकी [illegible] [illegible] और काश्मीरके बीच बसा था।

निराश हो चुके थे, उनके घर अनपेक्षित रूपसे चार पुत्रोंका जन्म हो जानेसे वे चारों पर अतिशय प्रेम करने लगे थे, और चारों भाइयोंको उपनिषद्‌की आज्ञाके अनुसार माता, पिता, गुरु और अतिथिकी पूजा देवकी तरह करना सिखाया भी गया था: 'मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव।' बालकोंमें जैसी दृढ भक्ति माता-पिताके प्रति थी, वैसी ही गाढ प्रीति उनमें आपसमें भी थी । राम भरतको अपने प्राणोंकी तरह मानते थे और लक्ष्मणको तो अपने साथ इस तरह रखते थे, मानों वे उनकी छाया ही हों। उनके मनमें यह विचार ही नहीं आता था कि वे सौतेले हैं ।

५. बालकोंको पौगण्डावस्था[1] प्राप्त होनेके बाद एक बार विश्वामित्र[2] ऋषि दशरथ राजाके दरबारमे आ पहुंचे। विश्वामित्रने एक यज्ञ शुरू किया था । कुछ राक्षस[3] उसमें बाधा डाल रहे थे । विश्वामित्र यज्ञको दीक्षा ले चुके थे, इस कारण वे शत्रुओंसे लड नही सकते थे; अत: उन्होंने दशरथसे विनती की कि वे राम और लक्ष्मणको उनकी मददके लिए भेजें ।

विश्वामित्रके साथ

पुत्र-प्राप्तिके मोहके कारण दशरथ अपने बालकोंको ऐसे संकटमें डालना नहीं चाहते थे; किन्तु विश्वामित्रके अत्यन्त आग्रहके कारण, उनकी मांग सुने विना ही

---

१. पौगण्डावस्था — बालक ५ वर्ष तक शिशु कहलाता है। बारह वर्ष तक कुमार, बारहसे सोलह तक पुगण्ड, सोलहमें बीस तक किशोर और उसके बाद युवक।

२. विश्वामित्रके पराक्रम, तप, वसिष्ठके साथ उनकी लड़ाई, ब्रह्मर्षि बननेकी उनकी इच्छा आदि बातें तथा वसिष्ठकी कथा जानने योग्य हैं।

३. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – १।

हरिश्चन्द्र,[१] बुद्ध,[२] महावीर[२] आदि सब इक्ष्वाकु-कुलके थे।

४. कोसल प्रान्त — अर्थात् अयोध्याके आसपासके प्रदेशमें दीर्घ काल तक रघुवंशी राजाओंका राज्य रहा। उन्हींमें दशरथ नामके एक राजा हो गये। उनके कौसल्या,[३] सुमित्रा और कैकेयी[३] नामकी रानियां थीं। दशरथके ठेठ बड़ी उमरमें चार पुत्र हुए। बड़े श्रीराम कौसल्याके गर्भसे, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राके उदरसे और भरत कैकेयीकी कोखसे जन्मे। रामका जन्म चैत्र सुदी नवमीके दिन दोपहरको मनाया जाता है। माना यह जाता है कि इसके वाद एकआध दिनमें भरतका जन्म हुआ और भरतके जन्मके एकआध दिन वाद लक्ष्मण और शत्रुघ्नका जन्म जुड़वां भाइयोंके रूपमें हुआ। चारों भाइयोंकी उमरमें नाममात्रका ही अन्तर था, फिर भी इतने कम समयके अन्तरसे पैदा हुए बड़े भाईके प्रति छोटोंको पूर्ण आज्ञा-पालक वनकर वरतना चाहिये, इसकी शिक्षा उन्हें आरम्भसे ही दी गई थी। वालकके जन्मकी कोई आशा न रह जानेसे जो वृद्ध पिता

---

१. हरिश्चन्द्र — सत्यवादी। रघुवंशी क्षत्रियोंका यह कुलधर्म गाया गया है कि पराक्रममें पीछे नहीं रहेंगे और एक बार की हुई प्रतिज्ञाको प्राण जाने पर भी नहीं तोड़ेंगे। 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाय वरु वचन न जाई॥' (तुलसीदास)

२. बुद्ध, महावीर — यह माना जाता है कि इक्ष्वाकु [illegible] और [illegible] दूसरी दो शाखाओंमें इन महापुरुषोंका जन्म हुआ था।

३. कौसल्या, कैकेयी — अर्थात् कोसल और केकय [illegible]। केकय प्रान्त पंजाब और [illegible] था।

निराश हो चुके थे, उनके घर अनपेक्षित रूपसे चार पुत्रोंका जन्म हो जानेसे वे चारों पर अतिशय प्रेम करने लगे थे, और चारों भाइयोंको उपनिषद्की आज्ञाके अनुसार माता, पिता, गुरु और अतिथिकी पूजा देवकी तरह करना सिखाया भी गया था: 'मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ।' बालकोंमें जैसी दृढ भक्ति माता-पिताके प्रति थी, वैसी ही गाढ प्रीति उनमें आपसमें भी थी । राम भरतको अपने प्राणोंकी तरह मानते थे और लक्ष्मणको तो अपने साथ इस तरह रखते थे, मानो वे उनकी छाया ही हों । उनके मनमें यह विचार ही नहीं आता था कि वे सौतेले हैं ।

विश्वामित्रके साथ

५. बालकोंको पौगण्डावस्था[1] प्राप्त होनेके बाद एक बार विश्वामित्र[2] ऋषि दशरथ राजाके दरबारमें आ पहुचे । विश्वामित्रने एक यज्ञ शुरू किया था । कुछ राक्षस[3] उसमें बाधा डाल रहे थे । विश्वामित्र यज्ञकी दीक्षा ले चुके थे, इस कारण वे शत्रुओंसे लड नहीं सकते थे; अत: उन्होंने दशरथसे बिनती की कि वे राम और लक्ष्मणको उनकी मददके लिए भेजें । पुत्र-प्राप्तिके मोहके कारण दशरथ अपने बालकोंको ऐसे संकटमें डालना नहीं चाहते थे; किन्तु विश्वामित्रके अत्यन्त आग्रहके कारण, उनकी मांग सुने बिना ही

१. पौगण्डावस्था — बालक ५ वर्ष तक शिशु कहलाता है। बारह वर्ष तक कुमार, बारहसे सोलह तक पुगण्ड, सोलहसे बीस तक किशोर और उसके बाद युवक।

२. विश्वामित्रके पराक्रम, तप, वसिष्ठके साथ उनकी लड़ाई, ब्रह्मर्षि बननेकी उनकी इच्छा आदि बातें तथा वसिष्ठकी कथा जानने योग्य है।

३. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – १।

उसे मंजूर करनेका वे पहलेसे वचन दे चुके थे, इसलिए और वसिष्ठके समझानेसे आखिर उन्होंने राम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके हाथमें सौंप दिया। सच पूछा जाय तो इस प्रकारकी सहायता मांगकर विश्वामित्रने तो रघुकुल पर उपकार ही किया था। वे धनुर्विद्या और अस्त्र-विद्यामें निपुण थे। उन्होंने दोनों भाइयोंको अपनी सारी युद्ध-कला सिखाई और उन्हें उत्तम योद्धा बनाया। राम-लक्ष्मणने उस विद्याके बलसे विश्वामित्रके शत्रुओंका नाश किया और उनका यज्ञ निर्विघ्न पूरा हुआ। यज्ञसे निवृत्त होनेके बाद विश्वामित्रने दोनों कुमारोंको यात्रा कराना शुरू किया। वे उन्हें अनेक प्रान्तोंमें ले गये और दोनों भाइयोंको उन प्रान्तोंकी जमीनों, नदियों, वहांकी पैदावारों, लोगों, उनका इतिहास और रीति-रिवाज आदिका अच्छा ज्ञान करा दिया। इस तरह घूमते-फिरते वे मिथिला[1] नगरीमें पहुंचे। वहांके नरेश जनक[2]के सीता नामक एक कन्या थी। जनकके पास एक बड़ा शिव-धनुष[3] था। जनकने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उस धनुषको चढ़ायेगा, उसके साथ सीताका ब्याह होगा। इस परीक्षाके लिए अनेक राजा आ चुके थे। लेकिन वे धनुषको उठा नहीं सके थे, इसलिए लज्जित होकर लौट गये थे। विश्वामित्रके कहने पर जनकने रामको दिखानेके लिए वह धनुष

१. वर्तमान दरभंगा जिला।

२. [illegible] था। लेकिन [illegible] मालूम नहीं है। [illegible]

३. देखिये, अन्तमें टिप्पणी — [illegible]

मंगवाया। विश्वामित्रकी आज्ञासे रामने पहले गुरुको प्रणाम किया, फिर बायें हाथसे धनुषको सहज ही उठा लिया और दाहिने हाथसे उस पर डोर चढ़ाने लगे, किन्तु इतनेमें धनुष टूट गया। रामचन्द्रके इस पराक्रमसे जनक बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने दशरथ राजाको बुलवानेके लिए तुरन्त ही अपने आदमी भेजे। अयोध्यावासियोंके आने पर जनकने राम-सीताका विवाह किया और अपनी दूसरी पुत्री तथा दो भतीजियोंका विवाह भी क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ कर दिया।

६. विवाह-कार्यसे निपटकर सब अयोध्याके लिए रवाना हुए। रास्तेमें उन्हें क्षत्रियोंके शत्रु परशुराम[1] मिले। उनका शरीर खूब ऊंचा और भारी डीलडौलवाला था। माथे पर जटाका भार था। आंखें लाल सुर्ख थीं। एक कन्धे पर बड़ा-सा फरसा था और दूसरे कन्धे पर एक बड़ा भयंकर वैष्णवी धनुष टंगा था। राम द्वारा शिव-धनुषके तोड़े जानेकी खबर सुनते ही उन्हें डर लगा होगा कि कहीं कोई बलवान क्षत्रिय खड़ा न हो जाये और ब्राह्मणोंको सताने न लगे। इसलिए उसके अधिक बलवान बननेसे पहले ही उसका काम तमाम

परशुराम

[1]. परशुरामका चरित्र, माता-पिताके प्रति उनकी भक्ति और उनके अद्भुत पराक्रम जानने योग्य हैं। वसिष्ठ बनाम विश्वामित्र और परशुराम बनाम रामकी कथाओं परसे कुछ विद्वान इतिहासको इस तरह समझाते हैं कि किसी जमानेमें ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके बीच भारी कलह मचा हुआ था।

उसे मंजूर करनेका वे पहलेसे वचन दे चुके थे, इसलिए और वसिष्ठके समझानेसे आखिर उन्होंने राम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके हाथमें सौंप दिया। सच पूछा जाय तो इस प्रकारकी सहायता मांगकर विश्वामित्रने तो रघुकुल पर उपकार ही किया था। वे धनुर्विद्या और अस्त्र-विद्यामें निपुण थे। उन्होंने दोनों भाइयोंको अपनी सारी युद्ध-कला सिखाई और उन्हें उत्तम योद्धा बनाया। राम-लक्ष्मणने उस विद्याके बलसे विश्वामित्रके शत्रुओंका नाश किया और उनका यज्ञ निर्विघ्न पूरा हुआ। यज्ञसे निवृत्त होनेके बाद विश्वामित्रने दोनों कुमारोंको यात्रा कराना शुरू किया। वे उन्हें अनेक प्रान्तोंमें ले गये और दोनों भाइयोंको उन प्रान्तोंकी जमीनों, नदियों, वहांकी पैदावारों, लोगों, उनका इतिहास और रीति-रिवाज आदिका अच्छा ज्ञान करा दिया। इस तरह घूमते-फिरते वे मिथिला[1] नगरीमें पहुंचे। वहांके नरेश जनक[2]के सीता नामक एक कन्या थी। जनकके पास एक बड़ा शिव-धनुष[3] था। जनकने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उस धनुषको चढ़ावेगा, उसके साथ सीताका ब्याह होगा। इस परीक्षाके लिए अनेक राजा आ चुके थे। लेकिन वे धनुषको उठा नहीं सके थे, इसलिए लज्जित होकर लौट गये थे। विश्वा-मित्रके कहने पर जनकने रामको दिखानेके लिए वह धनुष

१. वर्तमान दरभंगा जिला।

२. [illegible]

३. देखिये, टिप्पणी — [illegible]।

मंगवाया। विश्वामित्रकी आज्ञासे रामने पहले गुरुको प्रणाम किया, फिर बायें हाथसे धनुषको सहज ही उठा लिया और दाहिने हाथसे उस पर डोर चढाने लगे, किन्तु इतनेमें धनुष टूट गया। रामचन्द्रके इस पराक्रमसे जनक बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने दशरथ राजाको बुलवानेके लिए तुरन्त ही अपने आदमी भेजे। अयोध्यावासियोंके आने पर जनकने राम-सीताका विवाह किया और अपनी दूसरी पुत्री तथा दो भतीजियोंका विवाह भी क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ कर दिया।

६. विवाह-कार्यसे निपटकर सब अयोध्याके लिए रवाना हुए। रास्तेमें उन्हें क्षत्रियोंके शत्रु परशुराम[1] मिले। उनका शरीर खूब ऊंचा और भारी डीलडौलवाला था। माथे पर जटाका भार था। आंखें लाल सुर्ख थीं। एक कन्धे पर बड़ा-सा फरसा था और दूसरे कन्धे पर एक बड़ा भयंकर वैष्णवी धनुष टंगा था। राम द्वारा शिव-धनुषके तोड़े जानेकी खबर सुनते ही उन्हें डर लगा होगा कि कहीं कोई बलवान क्षत्रिय खड़ा न हो जाये और ब्राह्मणोंको सताने न लगे। इसलिए उसके अधिक बलवान बननेसे पहले ही उसका काम तमाम

परशुराम

---

१. परशुरामका चरित्र, माता-पिताके प्रति उनकी भक्ति और उनके अद्‌भुत पराक्रम जानने योग्य है। वसिष्ठ बनाम विश्वामित्र और परशुराम बनाम रामकी कथाओं परसे कुछ विद्वान इतिहासको इस तरह समझाते हैं कि किसी जमानेमें ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके बीच भारी कलह मचा हुआ था।

करनेके इरादेसे उन्होंने रामको वैष्णवी धनुष चढ़ानेके लिए दिया और अपने साथ युद्ध करनेको ललकारा । लेकिन जब उन्होंने रामको वह धनुष चढ़ाते देखा, तो तुरन्त ही उनका सारा मद उतर गया । वे निस्तेज हो गये । अबसे पहले पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेके लिए उन्होंने जो तपस्या की थी, वह उन्हें व्यर्थ-सी होती दीखी । इसलिए रामको प्रणाम करके वे फिर तप[1] के लिए चले गये ।

अयोध्याकाण्ड

कुछ वर्ष आनन्दमें बीत गये । बुढ़ापेके कारण दशरथ दिन पर दिन दुर्बल होते जा रहे थे । इसलिए उन्होंने एक दिन अपने राज्यके विद्वान ब्राह्मणों, माण्डलिक क्षत्रियों और वृद्ध पुरुषोंकी सभा बुलवाई और रामको युवराज बनानेके बारेमें उनकी सम्मति जाननी चाही । सभाने इस प्रस्तावको एकमतसे स्वीकार कर लिया और निश्चय किया कि दूसरे ही दिन युवराजके रूपमें रामका अभिषेक किया जाय ।

युवराज-पद

२. उस समय भरत अपने ननिहालमें थे । भरतकी अनुपस्थितिमें अचानक ही यह जो निश्चय हुआ, उसके कारण कैकेयीकी एक दासी मन्थराके मनमें सन्देह पैदा हो गया । उसने अपना सन्देह कैकेयीके चित्तमें जगाया और उसे इस बातके लिए उभाड़ा कि वह जैसे भी बने, इस अभिषेकको रोके । कैकेयी

कैकेयीका फन्द

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – ३ ।

पर मन्थराकी इस सीखका पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा। उसने कलह करनेका निश्चय कर लिया। एक वार किसी युद्धमें दशरथका रथ हांक कर कैकेयीने वीरतापूर्वक राजाके प्राण बचाये थे। इससे राजा उस पर प्रसन्न हुआ था और उसने उस समय कैकेयीको दो वर देनेका वचन दिया था। कैकेयीने सोचा कि उन वरोंको मांगनेका यह एक अच्छा अवसर है। शामको दशरथके कैकेयीके महलमें पहुचनेसे पहले ही उसने क्लेशका श्रीगणेश कर दिया। आभूषण उतार डाले, बाल खोल डाले, नये वस्त्र उतार कर पुराने और मैले वस्त्र पहन लिये और जमीन पर लोट कर जोरोंसे रोना शुरू कर दिया। महलमें प्रवेश करते ही दशरथको वहां क्लेशका वातावरण मिला। बहुत रोने-बिलखनेके बाद कैकेयीने दशरथसे अपने दो वर देनेको कहा। दशरथने इसके लिए वचन दे दिया। इस प्रकार उन्हें वचनसे बांध लेनेके बाद कैकेयीने पहले वर द्वारा रामके बदले भरतका युवराजके रूपमें अभिषेक चाहा और दूसरे वरसे रामको चौदह वर्षोंके लिए देशनिकाला देनेकी मांग की। दशरथको तनिक भी खयाल नहीं था कि ऐसी कोई मांग की जायगी। वे तो इस उमंग और हर्षके साथ अपनी चहेती रानीके महलमें आये थे कि दूसरे दिन सुबह अपने प्रिय पुत्रको युवराज बनाना है। अपने ही प्रस्तावसे सवेरे रामको युवराज-पद देनेका निश्चय करके अभिषेकके ही दिन उन्हें बिना किसी अपराधके चौदह वर्षके वनवासकी सजा किस तरह दी जा सकती है? यों दशरथ एक ओर प्रतिज्ञाका भंग करने और दूसरी ओर अन्यायपूर्ण कार्य करनेके संकटमें

फंस गये[१] । उसमें से बचनेके लिए उन्होंने कैकेयीको बहुत समझाया । उसके पैरों पड़े । उसकी धर्म-बुद्धिको जगानेका प्रयत्न किया । उसे इस बातका भान कराया कि रामके लिए ऐसी आज्ञा प्रसारित करनेसे लोगोंके मनमें उनके प्रति कितना तिरस्कार पैदा होगा; लेकिन कैकेयी टस-से-मस नहीं हुई । दशरथने वह सारी रात शोकमें और कैकेयीने कलहमें बिताई ।

दशरथका शोक

३. सवेरा होते ही वसिष्ठने अभिषेककी तैयारियां शुरू की । बड़ी देर हो जाने पर भी जब दशरथ तैयार होकर नहीं आये, तो उन्होंने राजा दशरथको जगानेके लिए एक सूतको भेजा । सूतने दशरथ और कैकेयीको सूतकीके रूपमें — शोकमग्न — देखा, किन्तु वह कुछ समझ नहीं सका । शोक और लज्जाकी अधिकताके कारण राजा भी कुछ बोल नहीं पा रहे थे । आखिर कुछ देरके बाद उन्होंने रामको बुला लानेकी आज्ञा की । राम तुरन्त ही राजाके सामने आकर खड़े हो गये; लेकिन दशरथके मुंहसे कोई बोल ही नहीं निकल रहा था । उनकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह रही

---

[१] दशरथने इस प्रसंगके निमित्तसे दो बार बिना यह सोचे कि मांग कैसी होगी, वह उचित होगी या नहीं, उसे स्वीकार करनेकी प्रतिज्ञा करके भूल की और फलतः वे संकटमें फंस गये । क्या बिना सोचे-समझे किसीके सामने प्रतिज्ञा करनेका [illegible] और [illegible] बार इस प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिए [illegible] सकता है? दशरथने हमें अच्छी तरह सिखा दिया है कि [illegible] किसी बात [illegible] विचार करना चाहिये ।

थी। यह सब देखकर राम घबरा गये और कैकेयीसे कारण पूछने लगे। इस डरसे कि दशरथ कुछ बोलेंगे नहीं और शरमके मारे मैं भी कुछ बोलूंगी नहीं, तो मेरा ही नुकसान होगा, राजाकी ओरसे कैकेयीने ही कहना शुरू किया। वह बोली — "राम, तेरे डरसे राजा कुछ बोल नहीं सकते। अपने प्रिय पुत्रको कठोर आज्ञा सुनानेके लिए उनका मुंह खुल नहीं रहा है; इसलिए मैं ही तुझे वह बात कहती हूं। सुन, बहुत पहले राजाने मुझे दो वरदान देनेका वचन दिया था। आज मैंने वे वर मांगे और इन्होंने मुझे वे दिये; लेकिन अब ये साधारण आदमीकी तरह पश्चात्ताप कर रहे हैं। इन वरोंको सत्य सिद्ध करना तेरे हाथमें है। राम, सबका मूल सत्य है। तू इस बातको जानता है और सब सज्जन भी जानते हैं। राजा उस सत्यको तेरे लिए किस प्रकार छोड़ सकते हैं?"

रामके व्रत

४. यह सुनकर राम बड़े दुःखी स्वरमें बोले — "देवी, यदि मैं राजाकी आज्ञा न मानूं, तो मुझे धिक्कार है। राजाकी आज्ञासे मैं आगमें कूदनेको तैयार हूं। मुझे बताइये कि राजाकी आज्ञा क्या है? राम एक-वचनी, एक-बाणी और एक-पत्नीव्रती है। वह कभी असत्य बोलता ही नहीं।"

५. इस प्रकार रामको वचनसे बांध लेनेके बाद कैकेयीने अपने वरदानोंकी बात कह सुनाई, और जताया कि राजाकी प्रतिज्ञाको सत्य सिद्ध करनेके लिए उसे तुरन्त ही अयोध्या छोड़ देनी चाहिये। राम एकदम जानेको राजी हो गये। इस संवादको

सुनते ही दशरथ मूर्छित हो गये । यह देखकर राम बहुत दुःखी हुए । उन्होंने कैकेयीसे कहा—"देवी, मुझे किसी साधारण मनुष्यकी तरह अर्थलोभी न समझिये । ऋषियोंकी भांति मैं भी पवित्र धर्मका पालन करनेवाला हूं । माता-पिताकी सेवा करने और उनकी आज्ञा माननेसे बढ़कर कोई बड़ा धर्म मैं मानता ही नहीं । आपने मुझे सच्चे सद्गुणीके रूपमें जाना नहीं है; नहीं तो आप राजाको इस दुःखमें न डालतीं । आपको ही मुझे वनमें जानेकी आज्ञा करनी चाहिये थी । जिस तरह राजाकी आज्ञा मुझे मान्य है, उसी तरह आपकी आज्ञा भी मेरे लिए शिरोधार्य है । अस्तु, अब मैं माताकी आज्ञा लेकर और सीताको समझाकर अभी ही विदा हो जाता हूं । आप इस बातका ध्यान रखिये कि भरत प्रजाका पालन भलीभांति करे और राजाकी सेवामें निरत रहे; क्योंकि यही हमारा सनातन धर्म है ।"

सीता और लक्ष्मणका साथ

६. वहांसे निकलकर राम सीधे ही कौसल्याके मन्दिरमें पहुंचे और उन्हें सब बातोंकी जानकारी दी । इस आकस्मिक संकटके आ पड़नेसे कौसल्याको जो दुःख हुआ, उसे भुलानेके लिए उन्हें तैयार करना आसान न था; किन्तु रामने प्रिय वचनोंसे उन्हें धीरज बंधाया और उनका आशीर्वाद लेकर वे सीताके पास पहुंचे । सीताने रामके साथ वन जानेका आग्रह किया । पत्नीके नाते पतिके भाग्यमें सहभागी बननेके अपने अधिकारकी बात सीताने रामके सामने रखी । राम उनकी विनतीको अस्वीकार नहीं कर सके, इस-

लिए सीताको साथ ले जानेका निश्चय हुआ । लक्ष्मणने भी रामके साथ जानेकी इच्छा प्रकट की । सुमित्राकी आज्ञा लेकर रामकी अनुमतिसे लक्ष्मण भी तैयार हुए । वीर माता सुमित्राने तुरन्त ही आज्ञा दे दी और कहा — "बेटा, रामको दशरथकी जगह मानना, सीताको मेरी जगह मानना और अरण्यको अयोध्या समझना ।"

वल्कल-परिधान

७ अपनी सारी सम्पत्ति दानमें देकर राम, लक्ष्मण और सीता अन्तमें दशरथसे विदा लेने गये । दशरथने सभी कुटुम्बियों और मन्त्रियोंको इकट्ठा किया । थोड़ी ही देरमें रामके वनवासकी बात सारे नगरमें फैल गई और अनेकानेक नागरिक राजमहलके सामने इकट्ठा हो गये । कैकेयीने तीनोंके लिए वल्कल लाकर रख दिये । राम और लक्ष्मणने उन्हें पहन लिया, किन्तु सीता उन्हें पहन नहीं पाई । आखिर रामने उन्हें सीताकी राजसी पोशाक पर ही बांध दिया । यह दृश्य देख कर सब लोगोंको कैकेयीकी निठुरता बहुत ही अखर गई । वसिष्ठने भी उसे धिक्कारा । उन्होंने यह भी कहा कि वचन-बद्ध होनेके कारण राम चाहे वनमें जायें, लेकिन सीताका उनके साथ जाना जरूरी नहीं है । रामकी अर्धाङ्गिनीके नाते उनकी ओरसे राज्य चलानेका उसे अधिकार है । उन्होंने यह धमकी भी दी कि यदि कैकेयीने अपना हठ न छोड़ा, तो सब नागरिकोंके साथ वे स्वयं भी वनमें चले जायेंगे! किन्तु इन प्रहारोंका कैकेयी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । उसका हृदय पत्थर बन गया था ।

वनवास

८. आखिर उन्हें एक रथमें वैठा कर देशकी सीमाके वाहर छोड़ आनेकी तैयारी की गई। सब गुरुजनोंको प्रणाम करके तीनों रथमें वैठे। हजारों लोगोंने रथको चारों ओरसे घेर लिया और पीछे-पीछे दौड़ने लगे। पिता भी पीछे दौड़े। पर मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। राम पिताकी यह स्थिति देख नहीं सकते थे, फिर भी यह सोच कर कि यह सब भी सहना ही होगा, उन्होंने सारथीको रथ वढ़ानेकी आज्ञा दी। कुछ लोग रामके साथ जंगलमें गये। रामने उन्हें वापस लौटनेके लिए कई वार समझाया, पर प्रेमकी अतिशयताके कारण किसीने उनकी सुनी नहीं। आखिर सांझ पड़ते-पड़ते रामने तमसा नदीके किनारे एक पेड़के नीचे अपना रथ खुलवाया। वेचारे प्रजाजन भी रात वहीं सो रहे। उस दिन किसीने अन्न ग्रहण नहीं किया। दूसरे दिन वड़े सवेरे रामने लक्ष्मणको जगाया, फिर दोनोंने सलाह करके यह निश्चय किया कि लोगोंके जागनेसे पहले निकल जाने पर ही लोग वापस जायेंगे। उन्होंने सारथीको तैयार होनेकी आज्ञा दी। जब लोगोंने सुबह रामको नहीं देखा, तो वे बहुत दुःखी हुए और निराश भावसे अयोध्या लौट आये।

९. सांझ पड़ते-पड़ते रथ कोसल देशकी सीमा पार कर गया और भागीरथीके तट पर आकर खड़ा हुआ। वहां भीलोंका एक राज्य था। वहांका राजा गुह रामका मित्र था। उसने रामकी बहुत अच्छी आवभगत की। दूसरे दिन सवेरे रामने सूतको वापस भेज दिया। गुहने रामको गंगा-पार पहुंचानेकी व्यवस्था की।

दशरथकी मृत्यु

१०. जब मूत अयोध्या पहुंचा, दशरथ कौसल्याके महलमें पुत्र-विरहसे बीमार पड़े थे। कई साल पहले जिस ऋषि-पुत्र श्रवणकी मृत्यु उनके हाथों हुई थी, वह और उसके अंधे माता-पिता उनको आखोंके सामने बार-बार खड़े होने लगे ओर वैसे-वैसे उनके लिए रामका वियोग अधिक कष्टप्रद होता गया। अन्तमें आधी रातके बाद 'राम, राम' रटते हुए वृद्ध राजाने प्राण छोडे। यो दशरथ गये, पर अन्तिम कालमें रामका रटन करनेका पाठ भारतवर्षको सिखाते गये।

तीन रानियोंकी दशा

११. बेचारी कौसल्या और सुमित्राको पति-पुत्र दोनोंका वियोग एक साथ सहना पड़ा। कैकेयी भी दशरथसे प्रेम करती थी, पर अभी राज्य-प्राप्तिका उसका मोह दूर नहीं हुआ था, इसलिए उस मोहने उसकी बुद्धि और शुभ भावनाओंको दबा दिया था। फलत वैधव्य प्राप्त होने पर भी उसे अधिक दुःख नही हुआ।

१२. दशरथके मरनेके बाद सारा प्रबन्ध करनेकी जिम्मेदारी वसिष्ठके माथे आ पड़ी। उन्होंने तुरन्त ही भरतको लिवा लानेके लिए दूत भेजे, लेकिन उन्हें समझा दिया कि अयोध्याकी कोई खबर वे वहां न कहें; क्योंकि कैकेयीके पिताके कुलमें कन्या-विक्रयकी प्रथा थी, इसलिए हो सकता था कि इस अवसरसे लाभ उठाकर उसका पिता बेटीका राज्य हड़पनेके लिए उस पर हमला करे।

१३. भरत और शत्रुघ्न कुछ ही दिनोंमें अयोध्या आ पहुंचे । नगरमें सर्वत्र शोक-दर्शक चिह्न देखकर उनके मनमें अनेक प्रकारकी अमंगल शंकाएं उठने लगीं, किन्तु सारथीकी ओरसे उन्हें कोई निश्चित समाचार नहीं मिले । भरत सीधे कैकेयीके मन्दिरमें पहुंचे और मांके पैर छू कर उन्होंने पिताके कुशल समाचार पूछे । कैकेयीने भरतको दशरथकी मृत्युके समाचार इस तरह सुनाये, मानो किसी पराये मनुष्यको उसके पिताकी मृत्युके समाचार सुनाकर ढाढ़स बंधा रही हो । इसके साथ ही उसने राम, लक्ष्मण और सीताके वनवासकी बात भी कही और भरतको राजाके रूपमें सम्बोधित करके उसका अभिनन्दन करने लगी ।

भरतका आगमन और कैकेयीको उलाहना

१४. किन्तु कैकेयीकी धारणाकी अपेक्षा भरत कुछ भिन्न ही प्रकारके पुत्र सिद्ध हुए । कैकेयीके दुश्चरितकी बात ध्यानमें आते ही भरतके सन्तापकी सीमा न रही । उन्होंने राज्य-लोभ और कठोरताके लिए कैकेयीको खूब धिक्कारा और राज्य स्वीकार करनेसे स्पष्ट इनकार कर दिया ।

१५. कैकेयीके पाससे भरत सीधे कौसल्यासे मिलने गये । पर [illegible] कि कैकेयीके आचरणमें भरतका भी हिस्सा होगा, [illegible] कौसल्याने भरतको कठोर बातें सुनाईं । [illegible] इन महापापोंके [illegible] और आंसुओंसे कहा — " माता, यदि मैं निरपराध न [illegible] [illegible]

[illegible]

भी गुलाम बनूं; तो मुझे सोई हुई गायको लात मारनेका पाप लगे; तो मुझे छठे हिस्सेसे अधिक कर लेने पर भी प्रजाका पालन न करनेवाले राजाको जो पाप लगता है वह लगे।" ऐसी भीषण शपथें लेकर भरत दुःखसे विह्वल हो गये और जमीन पर गिर गये। इससे क्रोध-रहित होकर कौसल्याने मधुर वचनोंसे भरतको सात्वना दी।

राज्यका अस्वीकार

१६. दूसरे दिन वसिष्ठने भरतसे दशरथकी उत्तरक्रिया विधिपूर्वक करवाई। प्रजाजनोंने भरतसे मुकुट धारण करनेकी विनती की, किन्तु भरतने दृढतापूर्वक उत्तर दिया — "राम हममें सबसे बड़े हैं; वे ही हमारे राजा बनेंगे। माताने पापसे जो राज्य प्राप्त किया है, उस राज्यको मैं नहीं लूंगा। मैं अभी ही वनमें जाकर अपने प्यारे भैयाको वापस लाऊंगा।"

रामको लौटा-लानेके लिए प्रस्थान

१७. भरतने तुरन्त ही चतुरंगिणी सेनाके साथ रामको लिवा लानेके लिए जानेकी तैयारी शुरू कर दी। उनकी ऐसी उदारता देख कर सब लोगोंने उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद दिये। अपनी सारी सेना एवं रानियों, मन्त्रियों, प्रजाजनों तथा गुरु वसिष्ठ और भाई शत्रुघ्नके साथ भरत गंगा किनारे पहुंच गये। वहा सुमन्त्रने भरतसे कहा — "इस स्थान पर राम और लक्ष्मणने सिर पर बरगदका दूध लगा कर जटा बांधी थी और वल्कल पहन कर वे यहां धरती पर सोये थे।" यह सुनकर भरतने भी तुरन्त ही अपनी राजसी पोशाक उतार डाली और रामके अयोध्या लौटने तक

वनमें रहने तथा जटा और वल्कल धारण करनेका व्रत ले लिया।

१८. इस बीच राम प्रयागके पास भरद्वाजके आश्रमसे आगे बढ़ कर चित्रकूट पर्वत पर रहने लगे थे। भरतको सेनाके साथ आया देख कर हर किसीके मनमें यह शंका उत्पन्न हो रही थी कि कहीं वह रामका सर्वनाश करनेके लिए ही तो नहीं जा रहे हैं। इसलिए कोई उन्हें ठीकसे यह बतानेको तैयार नहीं हुआ कि राम कहां टिके हुए हैं। लेकिन वसिष्ठके समझानेसे सबको भरतकी बन्धु-भक्तिका विश्वास हो गया और तब उन्हें इस बातका पता चला कि राम कहां रहते हैं। चित्रकूट पर रामकी पर्णकुटीको देखते ही भरतने सेनाको रुकनेके लिए कहा और स्वयं शत्रुघ्नके साथ रामकी ओर नन्हें बालककी तरह प्रेम-विभोर होकर दौड़ने लगे। दूरसे सेना आती देख कर लक्ष्मणको शंका हुई कि भरत शत्रु-भावसे आ रहे होंगे। अतएव वे भरतका वध करनेको तैयार हो गये किन्तु रामने उन्हें रोका और कहा — "भले आदमी, एक बार भरतको राज्य देनेकी प्रतिज्ञा करनेके बाद उसके प्राण लेनेसे क्या लाभ होगा? यदि भरत, लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्नके बिना मुझे सुख पहुंचानेवाली कोई वस्तु हो, तो वह तत्काल अग्निमें भस्म हो जाय!" रामको भरतकी निष्ठामें और बन्धु-भक्तिमें पूरी-पूरी श्रद्धा थी। उन्होंने लक्ष्मणको समझाया कि वह भरतके साथ निष्ठुर और अनुचित आचरण न करें।

१९. भरतने आते ही रामके चरणोंमें अपना माथा रख दिया और वे फूट-फूट कर रोने लगे। जब कुछ देरके बाद शान्त हुए, तो उन्होंने अयोध्याके सारे समाचार सुनाये। पिताकी मृत्युके समाचार सुनकर राम, लक्ष्मण और सीताने बहुत शोक किया। शोकके आवेगके शान्त होने पर भरतने रामसे वापस अयोध्या चलनेकी विनती की। उन्होंने कहा — "राजाने कैकेयीके समाधानके लिए मुझे जो राज्य-पद दिया था, उसे मैं वापस आपको अर्पण करता हूँ। इसलिए अब अयोध्या लौटनेमें आपकी प्रतिज्ञा टूटती नहीं है।" इस पर राम बोले — "पिताके वचनको सत्य सिद्ध करना ही पुत्रका कर्तव्य है। सत्य ही मुझे सब वस्तुओंसे अधिक प्रिय है; क्योंकि दूसरी कोई चीज सत्यकी बराबरी नहीं कर सकती। तिस पर राजाको तो विशेष रूपसे सदा सत्यका पालन करना चाहिये, क्योंकि राज्यकी इमारत सत्यकी नींव पर ही खड़ी की गई है। राजा जिस रीतिसे चलता है, प्रजा भी उसी रीति पर चलेगी। यदि राजा सत्यका त्याग करता है, तो प्रजा सत्यके मार्ग पर किस तरह चल सकती है? सत्य ही सब धर्मोंका मूल है; अतएव लोभ अथवा मोहके वश होकर मैं सत्यरूपी सेतुका त्याग नहीं करूंगा।"

भरत और रामका मिलाप

२०. यह निश्चय करना कठिन था कि दोनोंमें से किसकी उदारताकी अधिक प्रशंसा की जाय? जनता दोनों पर मुग्ध होकर 'धन्य, धन्य' पुकार रही थी। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि भरत रामकी पादुका राज्यासन पर रखें और रामके

नामसे राज चलायें। इसी समय भरतने रामसे यह भी कहा— "अगर आप चौदह वर्ष समाप्त होते ही अयोध्या नहीं लौटे, तो मैं चितामें प्रवेश करूंगा ।" भरतने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनवासीके वेशमें राजकाज चलाना शुरू किया ।

अरण्यकाण्ड

विराधका नाश

वनमें प्रवेश करनेके वाद राम अलग-अलग आश्रमोंको देखते हुए दक्षिणकी ओर वढ़ रहे थे, तभी एक दिन किसी जंगलमें उन्हें विराध नामका एक प्रचण्ड राक्षस मिला । उसने राम आदि पर धावा वोल दिया । राम और लक्ष्मण दोनोंको उसने अपने एक-एक हाथमें उठा लिया । उसकी चमड़ी इतनी मोटी थी कि उसमें वाण तो घुस ही नहीं सकते थे । किन्तु राम-लक्ष्मणने तलवारसे उसके उन हाथोंको काट डाला, जिनसे उसने उन्हें उठा रखा था । बादमें दोनोंने उसे एक गड्ढेमें गाड़ दिया ।

दण्डकारण्य

२. वहांसे वे दण्डकारण्यकी ओर गये । वहांके मुनियोंने राम और लक्ष्मणसे विनती की कि वे उन्हींके पास रहें और उनकी रक्षा करें । उन दिनों दण्डकारण्यमें राक्षसोंकी बहुत ही बड़ी बस्ती थी । चित्रकूटसे लेकर पम्पा सरोवर तक [illegible] और [illegible] राक्षस [illegible] सता रहे थे । [illegible] आश्रमोंमें [illegible] महीने या [illegible]

तक रहे और उन्होंने राक्षसोंका उपद्रव कम किया। इस तरह वनवासके दस साल बीते गये।

पंचवटी

३. इसके बाद राम दक्षिणमें अगस्त्य मुनिके आश्रममें पहुंचे। अगस्त्यने तीनोंका खूब स्वागत-सत्कार किया और रामको एक बड़ा वैष्णवी धनुष, एक अमोघ बाण, अखूट बाणोंसे भरे दो तरकश और सोनेके म्यानवाली एक तलवार भेंट की और उन्हें पंचवटीमें रहनेकी सलाह दी।

जटायु

४. पंचवटी जाते हुए रास्तेमें जटायु नामक गिद्धसे उनकी मित्रता हो गई। उसे अपने साथ लेकर वे गोदावरीके किनारे आ पहुंचे। वहां लक्ष्मणने एक सुन्दर पर्णकुटी बनाई। लक्ष्मणकी मेहनतसे प्रसन्न होकर रामने उन्हें गले लगा लिया और बोले — "तेरे इस श्रमके लिए आलिंगनके अतिरिक्त और कुछ देनेको मेरे पास है नहीं।" तीनों उस पर्णकुटीमें रहते थे और जटायु पेड़ पर बैठकर उनकी रखवाली करता था।

शूर्पणखा

५. एक दिन जाड़ोंमें राम, लक्ष्मण और सीता नदीमें नहाकर वापस आ रहे थे, तभी शूर्पणखा[1] नामकी एक राक्षसी वहां आ पहुंची। वह लंकाके राजा रावणकी बहन होती थी और दण्डकारण्यमें खर और दूषण नामके अपने सगे भाइयोंके साथ रहती थी। रामको देखकर वह उन पर मुग्ध हो गई और

१. शूर्पणखाका मतलब है, सूप-जैसे नखोंवाली। मालूम होता है, वह रावणकी मौसेरी बहन रही होगी।

उसने उनके साथ व्याह करनेकी इच्छा प्रकट की। राम-लक्ष्मणने पहले तो उसकी बातको हंसीमें टाल दिया; लेकिन बादमें उसका बेहद जंगलीपन देखकर उन्हें उस पर घृणा पैदा हुई; फलतः रामकी प्रेरणासे लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट लिये। शूर्पणखा चीखती, चिल्लाती और रोती हुई खरके पास पहुंची। खरने चौदह बलवान राक्षसोंको आज्ञा दी कि वे राम, लक्ष्मण और सीताको मारकर उनका खून शूर्पणखाको पिलायें। शूर्पणखा राक्षसोंके साथ फिर रामके आश्रमके पास पहुंची। रामने जैसे ही उन्हें आते देखा, लक्ष्मण और सीताको उन्होंने पर्णकुटीमें भेज दिया और राक्षसोंके हमला करनेसे पहले ही उन पर बाण चलाकर उन्हें मार डाला। शूर्पणखा फिर दौड़ी-दौड़ी खरके पास पहुंची। इस पर खर अपने सेनापति दूषण और राक्षसोंकी सेनाके साथ पंचवटी पर आक्रमण करनेके लिए चल पड़ा। रामको यह विश्वास था कि कुछ-न-कुछ उपद्रव अवश्य होगा, इसलिए उन्होंने पहलेसे ही सीताको पहाड़ोंमें भेज दिया था और खुद लड़ाईके लिए तैयार होकर बैठे थे। एक ओर अकेले राम थे और दूसरी तरफ राक्षसोंका बड़ा दल था। दोनोंके बीच भयंकर संग्राम छिड़ गया। आखिर रामने उन सबको नष्ट कर डाला। राम विजयी हुए।

६. जब शूर्पणखाने एक ही पुरुषके हाथों अपने भाई और उनके सारे राक्षसोंका संहार देखा, तो वह दौड़ी-दौड़ी रावणके पास लंका पहुंची। रावण उस समय सबसे बलवान राजा था। उसका राज्य-कोश तीनों लोकोंमें कहीं समाता न था। वह ब्राह्मण था और विद्वान तथा शास्त्रज्ञ था।

वह सब प्रकारकी मंत्र-विद्यामें और लक्ष्य-भेदकी विद्यामें कुशल था। राज्य-पद्धतिकी रचनामें निपुण था। उसका राज्य केवल लंकामें ही नहीं, बल्कि भारतवर्षके कई प्रदेशोंमें था और वहां उसकी सेना पड़ी रहती थी। उसके राज्यकी दसों दिशाओंमें कहां क्या हो रहा है, इसकी छोटीसे छोटी खबर उसे बराबर मिलती रहती थी; इसीलिए वह दशानन अर्थात् दसों दिशाओंमें मुंह रखनेवाला कहा जाता था। उसका राज्य प्रजाके लिए त्रासदायक और पृथ्वीके लिए भार-रूप था। वह अत्यन्त मदान्ध और कामी था। उसने हजारों स्त्रियोंको अपने यहां कैद कर रखा था। वह तपस्वियों और ब्राह्मणोंसे भी कर वसूल करता था। उसे अपने बलका इतना अभिमान था कि पिशाच, राक्षस, देव तथा दैत्य किसीके भी हाथों मरनेका उसे कोई डर नहीं था। मनुष्योंकी तो वह परवाह ही क्यों करने लगा? शूर्पणखाने उसके पास जाकर लक्ष्मण द्वारा हुए अपने अपमानकी और रामके पराक्रमकी बात सुनाई। पर इस अपमान और युद्धका सच्चा कारण न बताते हुए उसने रावणको यह समझाया कि मैं रामकी सुन्दर स्त्री सीताको तेरे लिए हरण करके ला रही थी, इसीलिए मुझे यह सब सहना पड़ा है।

सुवर्ण मृग

७. रावणने शूर्पणखाको ढाढस बंधाया और निश्चय किया कि जिस किसी भी तरह सीताका हरण करके वह रामसे इसका बदला लेगा। कथा यों कही गई है कि मारीच नामका एक असुर कहीं तप कर रहा था। रावण उससे जाकर मिला और उसे सुवर्ण मृग बनकर सीताको ललचानेके लिए समझाया। मारीचने

उसने उनके साथ व्याह करनेकी इच्छा प्रकट की। राम-लक्ष्मणने पहले तो उसकी वातको हंसीमें टाल दिया; लेकिन वादमें उसका वेहद जंगलीपन देखकर उन्हें उस पर घृणा पैदा हुई; फलतः रामकी प्रेरणासे लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट लिये। शूर्पणखा चीखती, चिल्लाती और रोती हुई खरके पास पहुंची। खरने चौदह वलवान राक्षसोंको आज्ञा दी कि वे राम, लक्ष्मण और सीताको मारकर उनका खून शूर्पणखाको पिलायें। शूर्पणखा राक्षसोंके साथ फिर रामके आश्रमके पास पहुंची। रामने जैसे ही उन्हें आते देखा, लक्ष्मण और सीताको उन्होंने पर्णकुटीमें भेज दिया और राक्षसोंके हमला करनेसे पहले ही उन पर वाण चलाकर उन्हें मार डाला। शूर्पणखा फिर दौड़ी-दौड़ी खरके पास पहुंची। इस पर खर अपने सेनापति दूषण और राक्षसोंकी सेनाके साथ पंचवटी पर आक्रमण करनेके लिए चल पड़ा। रामको यह विश्वास था कि कुछ-न-कुछ उपद्रव अवश्य होगा, इसलिए उन्होंने पहलेसे ही सीताको पहाड़ोंमें भेज दिया था और खुद लड़ाईके लिए तैयार होकर बैठे थे। एक ओर अकेले राम थे और दूसरी तरफ राक्षसोंका बड़ा दल था। दोनोंके बीच भयंकर संग्राम छिड़ गया। आखिर रामने उन सबको नष्ट कर डाला। राम विजयी हुए।

३. जब शूर्पणखाने एक ही पुरुषके हाथों अपने भाई और उनके सारे राक्षसोंका संहार देखा, तो वह दौड़ी-दौड़ी

रावण

रावणके पास लंका पहुंची। रावण उस समय [illegible] का राजा था। उसका राज्य-कोश [illegible] समाता न था। [illegible] [illegible] और विद्वान तथा शास्त्रज्ञ था।

वह नव प्रकारकी मंत्र-विद्यामें और लक्ष्य-भेदकी विद्यामें कुशल था। राज्य-पद्धतिकी रचनामें निपुण था। उसका राज्य केवल लंकामें ही नहीं, बल्कि भारतवर्षके कई प्रदेशोंमें था और वहां उसकी सेना पड़ी रहती थी। उसके राज्यकी दसों दिशाओंमें क्या क्या हो रहा है, इसकी छोटीसे छोटी खबर उसे बराबर मिलती रहती थी; इसीलिए वह दशानन अर्थात् दसों दिशाओंमें मुंह रखनेवाला कहा जाता था। उसका राज्य प्रजाके लिए त्रासदायक और पृथ्वीके लिए भार-रूप था। वह अत्यन्त मदान्ध और कामी था। उसने हजारों स्त्रियोंको अपने यहां कैद कर रखा था। वह तपस्वियों और ब्राह्मणोंसे भी कर वसूल करता था। उसे अपने बलका इतना अभिमान था कि पिशाच, राक्षस, देव तथा दैत्य किसीके भी हाथों मरनेका उसे कोई डर नहीं था। मनुष्योंकी तो वह परवाह ही क्यों करने लगा? शूर्पणखाने उसके पास जाकर लक्ष्मण द्वारा हुए अपने अपमानकी और रामके पराक्रमकी बात सुनाई। पर इस अपमान और युद्धका सच्चा कारण न बताते हुए उसने रावणको यह समझाया कि मैं रामकी सुन्दर स्त्री सीताको तेरे लिए हरण करके ला रही थी, इसीलिए मुझे यह सब सहना पड़ा है।

७. रावणने शूर्पणखाको ढाढस बंधाया और निश्चय किया कि जिस किसी भी तरह सीताका हरण करके वह रामसे इसका बदला लेगा। कथा यों कही गई है कि मारीच नामका एक असुर कहीं तप कर रहा था। रावण उससे जाकर मिला और उसे सुवर्ण मृग बनकर सीताको ललचानेके लिए समझाया। मारीचने

सुवर्ण मृग

रावणको इस दुष्ट कृत्यसे विरत करनेका प्रयत्न किया; पर रावण माना नहीं। उल्टे, वह मारीचको मारनेके लिए तैयार हो गया। इससे मारीच घबरा गया और अंतमें रावणकी इच्छाके अनुसार व्यवहार करनेको तैयार हो गया। एक रंग-बिरंगे सुवर्ण मृगका रूप धारण करके वह रामके आश्रमके पास पेड़ोंकी कोमल पत्तियां खाता हुआ इस तरह घूमने लगा कि जिससे सीताकी दृष्टि उस पर पड़ जाये। सीता उस समय फूल चुन रही थी। उसने इस हरिणको जीता या मरा पकड़ कर लानेके लिए रामसे आग्रह किया। पत्नीको खुश करनेके लिए राम तुरन्त ही हरिणके पीछे दौड़े और लक्ष्मणसे कहते गये कि वह सीताको संभाले। मारीच दौड़ता-दौड़ता रामको बहुत दूर ले गया और आखिर बच निकलनेका मौका ढूंढ़ने लगा। जब रामने देखा कि हरिण जिन्दा पकड़में नहीं आ सकेगा, तो उन्होंने उसे अपने बाणसे मार गिराया। मरते समय उसने अपना मूल स्वरूप[1] धारण कर लिया और रावणके साथ तय किये हुए संकेतके अनुसार रामकी-सी आवाजमें उसने चिल्ला कर पुकारा — "हे सीता! हे लक्ष्मण!" हरिणके बदले असुरको मरा पड़ा देखकर रामने सोचा कि यह कोई आसुरी धोखा हुआ है। अतएव वे सीताकी सुरक्षाके बारेमें चिन्तित हो उठे। किन्तु उन्होंने धैर्यसे काम लिया। [illegible] और [illegible] [illegible] करके वे तेजीसे [illegible] और लौट पड़े।

---

१. [illegible]

८. इधर सीताने मारीचकी मरते समयकी चीख सुनी और लक्ष्मणसे कहा कि वे रामकी मदद पर जायें। लक्ष्मणको लगा कि रामकी आज्ञाके बिना सीताको छोड़कर जानेसे राम गुस्सा होंगे, इसलिए उन्होंने सीताको धीरज रखनेके लिए समझाया। लेकिन एक ही तरफका विचार करनेवाली और उतावले स्वभावकी सीताको इससे क्रोध हो आया; सीताके मनमें लक्ष्मणके प्रति अनुचित शंका पैदा हुई और फलतः सीताने लक्ष्मणको न कहने-जैसी बातें कह डालीं। इससे बहुत दुःखी हो कर लक्ष्मणको धनुष-बाणके साथ रामके पीछे जाना पड़ा।

सीता-हरण

९. लक्ष्मणके चले जाने पर थोड़ी ही देरमें रावण संन्यासीके वेशमें पर्णकुटीके पास पहुंचा। सीताने साधु समझ कर उसका स्वागत-सत्कार किया और उसे अपने कुल-गोत्रका परिचय दिया। रावणने भी अपना परिचय दिया और अपने राज्य, सम्पत्ति, पराक्रम आदिका वर्णन किया। बादमें वह सीताको अपनी पटरानी बननेके लिए ललचाने लगा। साधु-वेशमें असुरको देखकर सीता बहुत गुस्सा हुई और उसने उसे खूब धिक्कारा। इस पर रावणने अपना आसुरी स्वरूप प्रकट किया। फिर एक हाथसे उसने सीताकी चोटी पकड़ कर दूसरे हाथसे उसे उठा लिया और बड़े खच्चरोंवाले अपने रथमें बैठाकर वह वहांसे चलता बना। सीताने राम और लक्ष्मणको खूब चिल्ला-चिल्लाकर पुकारा, लेकिन राम-लक्ष्मण

उसकी पुकार सुन न सके। आश्रमसे कुछ ही दूर एक पेड़ पर वृद्ध जटायु लंगड़ा पैर लिये बैठा था। सीताकी दृष्टि उस पर पड़ी और उसने उसे पुकारा। बूढ़ा होते हुए भी वह रामका शूरवीर मित्र सीताकी मददके लिए उड़ा। उसने अपनी चोंचसे रावणके खच्चरोंको मार डाला और रथको चकनाचूर कर दिया। अपनी चोंचके प्रहारसे उसने रावणके हाथोंको घायल कर दिया। इस पर रावण सीताको जमीन पर रखकर जटायुसे लड़ने लगा। जटायुने रावणके विरुद्ध अपनी सारी ताकत लगा दी। लेकिन बेचारा एक बूढ़ा पक्षी उस असुरके सामने कब तक टिक पाता? आखिर दुष्ट रावणने अपनी तलवारसे जटायुके पंख काट डाले। इस पर वह निर्बल होकर जमीन पर जा गिरा। इस प्रकार एक अबलाकी रक्षाके लिए अपने प्राण देकर पक्षिराज जटायुने अपना जीवन धन्य किया।

वानर

१०. रामायणमें वानर नामकी एक जातिका वर्णन पाया जाता है। ये प्राणी दीखनेमें कुछ मनुष्य और कुछ बन्दरके जैसे थे। बन्दरकी तरह इनके शरीर पर लम्बे बाल और पूंछ थी। ये फल, मूल और कन्द खाकर रहते थे और शायद ही कभी वस्त्र पहनते थे। लेकिन उनमें मनुष्योंसे मिलती-जुलती राज्य-व्यवस्था थी और उनकी वाणी [illegible] व [illegible] विज्ञान भी मनुष्योंके समान [illegible] था। सदाचार, नीति, शील, प्रामाणिकता, शौर्य आदि गुणोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो वानरोंकी मनुष्यता नरके नामसे प्रसिद्ध जातियोंसे किसी तरह कम न थी। आदि

नामक एक वानर इस नमूची जातिका राजा था। उसने अपने भाई सुग्रीवको देशनिकाला देकर उसकी स्त्री ताराको अपनी रानी बना लिया था। भाईके डरसे सुग्रीव हनुमान और अन्य तीन वानरोंके साथ ऋष्यमूक पर्वत पर लुक-छिप कर रहता था। हनुमान सुग्रीवका परम मित्र और मन्त्री था। वानरोमें वह सबसे अधिक बलवान, बुद्धिमान और चरित्रवान था। वह आजन्म ब्रह्मचारी था।

११ जटायुको मार कर रावण सीताको उठाकर फिर लंकाकी तरफ दौड़ने लगा। ऋष्यमूक पर्वतके शिखर परसे जाते हुए सीताने सुग्रीव आदि पाच वानरोको वहा बैठा देखा। ये लोग रामको मेरा समाचार दे सकेंगे, इस आशासे सीताने अपने आचलका छोर फाड़ कर उसमें कुछ आभूषण बांधे और उन्हें वानरोंकी तरफ फेंक दिया।

१२. नदियो और पर्वतोंको लाघता हुआ, समुद्र पार करके रावण बड़े वेगके साथ लकामें आ पहुंचा। वहां सीताको अपनी सारी सम्पत्ति दिखा कर वह उसे अपनी पटरानी बनानेके लिए ललचाने लगा। लेकिन रामके समान सिंहकी पत्नी एक चोरकी भला क्या परवाह करती? उसने कठोर शब्दोंमें रावणको धिक्कारा। इस पर रावणने उसे एक वर्षकी मुहलत दी और इस अवधिमें न समझने पर उसके टुकड़े-टुकड़े करके खा जानेकी धमकी दी। सीताको अशोक नामक एक वनमें राक्षसियोंके कड़े पहरेमें रखा गया। सीताके मनमें रामके प्रति पूरी भक्ति थी और उनके पराक्रम तथा शौर्यके लिए

गाढ़ श्रद्धा थी, इसलिए उसने दुःखके इन दिनोंको धीरजके साथ सह लेनेका साहस किया ।

किष्किन्धाकाण्ड

इधर राम और लक्ष्मण जब लौटे, तो सीताको न देखकर बहुत घबरा गये । रामके शोककी तो कोई सीमा ही न रही ।

रामका शोक

'सीता', 'सीता' पुकारते हुए उनकी हालत पागल-जैसी हो गई । वे पेड़ों, पत्तों, पशुओं, पक्षियों आदि सबके पास जा-जा कर उनसे सीताके समाचार पूछने लगे । लक्ष्मणने रामको धीरज रखने और सीताकी खोजके लिए प्रयत्न करनेकी सलाह दी । दोनों भाई आश्रम छोड़कर सीताको खोजने निकल पड़े । रास्तेमें उन्हें घायल होकर पड़ा हुआ जटायु मिला । उसने समाचार दिये कि सीताका हरण करनेवाला रावण है । कुछ ही देर बाद अपने घावोंकी वेदनासे उसका शरीर छूट गया । ऐसे दुःखमें सच्ची सहायता करनेवाले मित्रकी मृत्युसे दोनों भाई बहुत ही दुःखी हुए । उन्होंने समुचित रीतिसे जटायुकी अन्त्यक्रिया की और फिर दक्षिणकी ओर बढ़ने लगे । अपनी इस यात्राके मार्गमें वे कबन्ध नामक एक राक्षसके हाथमें पड़ गये, लेकिन उसको मार कर सुरक्षित रूपसे आगे बढ़े । उन्होंने [illegible] मतंगके आश्रममें निवास [illegible] देकर [illegible] पर उपकार किया ।

२. आगे चलते हुए वे पम्पा सरोवरके पास मतंग ऋषिके आश्रममें आ पहुंचे । वहां शवरी[1] नामकी एक भील तपस्विनीने राम-लक्ष्मणका बड़े भावसे स्वागत-सत्कार किया ।

वानरोंके साथ मित्रता

३. सुग्रीव आदिने ऋष्यमूक पर्वत परसे राम-लक्ष्मणको अपनी ओर आते देखा । इस बातका पता लगानेके लिए कि वे मित्र-पक्षके हैं अथवा बालिके पक्षके, सुग्रीवने हनुमानको राम-लक्ष्मणके पास भेजा । लक्ष्मणने हनुमानको अपने सारे हाल सुनाये और सुग्रीवकी मददके लिए बिनती की । राम और लक्ष्मणको देखनेके क्षणसे ही हनुमानके हृदयमें रामके लिए उत्कट भक्ति जागी । उन्होंने रामकी सेवामें जीवन बितानेको अपने लिए एक महान आनन्दका पर्व माना । वे दोनों भाइयोंको उठाकर सुग्रीवके पास ले गये । राम और सुग्रीवने एक-दूसरेका हाथ पकड़ कर अपनी मित्रता प्रदर्शित की, और फिर हनुमान द्वारा प्रज्वलित अग्निकी प्रदक्षिणा करके दोनोंने एक-दूसरेके प्रति वफादार रहनेकी और परस्पर मदद करनेकी प्रतिज्ञा की । इसके बाद सीताके फेंके हुए जो आभूषण सुग्रीवके हाथमें आये थे, उन्हें सुग्रीवने दोनों

---

१ भारतवर्षमें वर्ण और पंक्तिके भेदोंके सुदृढ़ हो जानेके बाद वैष्णव आचार्योंने उन्हें तोड़नेके अप्रत्यक्ष प्रयत्न किये । उस समयके साहित्यने प्रेम-धर्मको मर्यादारहित सिद्ध करनेके लिए रामको शवरीके जूठे बेर खिलाये हैं । किन्तु दुर्भाग्यवश इस धारणाके फैल जानेसे कि राम-चरित्र केवल गेय है, अनुकरणीय नहीं, वैष्णव आचार्योंके ये प्रयत्न व्यवहारमें बहुत सफल नहीं हुए । इसके विपरीत, साधारण वैष्णवने साधारण स्मार्तसे भी अधिक पंक्तिभेदकी भावनाको बढ़ावा दिया ।

भाइयोंको दिखाया। रामने उन्हें पहचान लिया, किन्तु अधिक निश्चय करनेकी दृष्टिसे लक्ष्मणसे पूछा। लक्ष्मणने कहा—“मैं इस कड़े और कुण्डलको तो पहचान नहीं सकता; केवल पैरोंके ये नूपुर मेरे परिचित हैं; क्योंकि जब मैं प्रतिदिन सीताके पैर छूता था, तो मेरी दृष्टि इन पर पड़ती थी।”

रामकी प्रतिज्ञा

४. रामको सुग्रीवकी मदद मिलनेसे पहले सुग्रीवके मार्गसे वालिका कांटा दूर होना जरूरी था; इसलिए रामने वालिको मारनेकी प्रतिज्ञा की। किन्तु इस प्रतिज्ञासे सुग्रीवको विश्वास न हुआ। उसे वालिके बलका भारी भय था। उसने रामके सामने वालिके बलका वर्णन करके रामसे कहा कि वे अच्छी तरह सोच-विचार करनेके बाद ही प्रतिज्ञा करें। रामने सुग्रीवको अपने बलकी प्रतीति करानेके लिए हड्डियोंके एक बड़ेसे ढेरको पैरके अंगूठेकी ठोकरसे तितर-बितर कर दिया। पर उससे भी सुग्रीवको प्रतीति नहीं हुई। इस पर रामने शालके वृक्षोंको अपने एक ही बाणसे काट गिराया। यह देखकर सुग्रीवको रामके बलका विश्वास हो गया।

वालिके साथ युद्ध

५. फिर राम [illegible] किष्किन्धाकी ओर गये, जहाँ वालि रहता था। सुग्रीवने वालिको युद्धके लिए ललकारा। वालि तुरन्त ही बाहर निकल आया। सारे [illegible] वेशमें दोनों भाइयोंमें [illegible] [illegible]। राम एक पेड़की आड़में [illegible] [illegible] उस युद्धको देख रहे थे। सुग्रीव युद्ध करने लगा, किन्तु [illegible] दोनों भाई [illegible]

इसलिए राम यह जान न सके कि उनमे कौन सुग्रीव है और कौन बालि । अतएव कहीं सुग्रीव न मारा जाये, इस डरसे रामने अपना बाण नही छोड़ा । परिणाम यह हुआ कि सुग्रीवको युद्धसे भाग आना पड़ा । बादमें पहचानके लिए पीले फूलोंकी माला पहनकर सुग्रीव फिर युद्धके लिए गया । राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि पेड़के पीछे छिपकर दोनों भाइयोंकी कुश्ती देखने लगे । जब सुग्रीव फिर हारने लगा, तो रामने बालि पर बाण चलाकर उसे धराशायी कर दिया । बालि गिरा तो सही, पर मरा नही । राम और लक्ष्मण उसके पास पहुचे । बालिने उलाहना देते

बालिका उलाहना

हुए कहा — "हे राम, आप सत्याचरणी, पराक्रमी, धर्मशील, तेजस्वी और सन्मार्ग पर चलनेवाले कहे जाते है; फिर भी जब मैं दूसरेके साथ युद्ध कर रहा था, तब एक ओर छिपकर आपने मुझे बाण मारा । क्या आपका यह काम न्यायोचित हुआ ? मैंने आपके राज्य अथवा नगरमें पहुंचकर आपका कोई अपराध नही किया था । छिपकर पीछेसे शस्त्र-प्रहार करने अथवा अपने साथ युद्ध न करनेवालेको मारनेका यह अधर्म-कृत्य करके अब आप सज्जनोंके बीच क्या मुह लेकर खड़े होंगे ? अस्तु । जो हुआ, सो हुआ । मेरे बाद सुग्रीवको गादी पर बैठाइये । आपका यह काम तो निन्दनीय ही है, फिर भी यह उचित है कि मेरे बाद सुग्रीवको गादी मिले ।"

६. इस उलाहनेके उत्तरमें रामने कहा — "धर्माचरणकी स्थापनाके लिए ही मैं पृथ्वी पर विचरण कर रहा हूं। इन दिनों

रामका उत्तर

तुम केवल कामान्ध बनकर और धर्माचरण छोड़ कर निन्दनीय कर्म कर रहे थे। पिता, ज्येष्ठ बन्धु और गुरु तीनों पिताके समान हैं; और पुत्र, छोटा भाई तथा शिष्य ये तीनों पुत्रके समान हैं। तुमने सज्जनोंका धर्म छोड़ कर पुत्रवधूके समान सुग्रीवकी स्त्रीके साथ अधर्माचरण किया है। अतएव तुम्हारे लिए मृत्यु-दण्डसे भिन्न और कोई दण्ड उचित नहीं। तुम्हें छिपकर मारनेका कारण यही है कि तुम वनचर प्राणी हो और मृगयाके नियमके अनुसार धर्म-प्राण राजा भी प्राणियोंको छिपकर अथवा कपटसे फंसा कर भी मारते हैं; इसलिए तुम्हें इस तरह मारनेमें मैंने कोई अधर्म नहीं किया है।"

७. वालि और सुग्रीवके समान बुद्धियुक्त प्राणियोंको वनचर पशुओंकी पांतमें बैठाना आजके युगमें हमें जंचता नहीं है।

उत्तरकी योग्यायोग्यता

तिस पर एक ओर वानरोंको वनचर मानकर शिकारके नियमोंका सहारा लेना, और दूसरी ओर उनके स्त्री-पुरुष-सम्बन्धोंको संस्कारी मनुष्य-समाजके नियम लागू करना और उस कसौटी पर धर्म्याधर्म्यताका निर्णय करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। किन्तु जिस समय रामायणकी रचना हुई थी, उस समयके विचारशील मनुष्य इन जातियोंके बारेमें क्या सोचते थे, उसी परसे हम रामके इस कार्यकी न्याय्यान्याय्यताका विचार कर सकते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि वाल्मीकिको रामका यह कृत्य ऐसी मृगया-जैसा न लगा कि जिस पर कोई शंका ही न उठाई जा सके। किन्तु कुछ मिला कर उन्हें

यह अयोग्य भी प्रतीत नहीं हुआ और इसी कारण उन्होंने इसका बचाव भी किया है । वाल्मीकिके मनमें उन दिनों भी शंका उठी थी । इस परसे हमें यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस प्रकारका बचाव आज लूला ही माना जा सकता है ।

८. वालि वीरोंको शोभा देनेवाली रीतिसे मृत्युकी शरण गया । मरनेसे पहले उसने सुग्रीवके गलेमें अपनी माला पहनाई और अपने पुत्र अंगदकी सार-संभाल रखनेके लिए कहा । रामने सुग्रीवको आदेश दिया कि वह अंगदको युवराज-पद पर प्रतिष्ठित करे । वालि वीर पुरुष था । उसकी मृत्युसे राम-लक्ष्मणको भी दुःख हुआ । सुग्रीवने और दूसरे वानरोंने भी शोक मनाया ।

वालिकी मृत्यु

९. वालिकी उत्तरक्रियाके बाद कपियोंने सुग्रीव और अंगदका राजा एवं युवराजके रूपमें अभिषेक किया । कुछ दिन इसी तरह आनन्दमें बीत गये । इतनेमें चौमासा शुरू हो गया । अतएव राम-लक्ष्मण एक गुफामें रहने लगे । चौमासा बीत जाने पर भी सुग्रीव तो भोग-विलासमें ही डूबा रहा । रामकी सहायता करनेकी अपनी प्रतिज्ञाको वह भूल ही गया । इससे राम-लक्ष्मण दोनोंको चिन्ता हुई । उन्हें सुग्रीवके प्रति तिरस्कार हो आया । आखिर एक दिन उग्र स्वभावके लक्ष्मण सीधे सुग्रीवके दरबारमें पहुंचे । उन्होंने सुग्रीवको धमकाते हुए कहा— "अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो; नहीं तो याद रखना कि मरकर वालि जिस रास्ते गया है, वह रास्ता अभी बन्द नहीं हुआ है ।"

सुग्रीवको धमकी

१०. इस धमकीसे सुग्रीवकी आंखें खुल गईं । उसने तुरन्त ही चारों दिशाओंमें अपने दूत भेजकर सव वानर-दलोंको इकट्ठा होनेकी आज्ञा प्रसारित की । हिमालय

वानरोंका प्रस्थान

और विंध्याचल-जैसे दूरके पर्वतोंसे भी करोड़ोंकी संख्यामें वानर आ पहुंचे । काले मुंह, लाल मुंह और भूरे मुंहवाले सभी प्रकारके कपि दक्षिण देशमें इकट्ठा होने लगे । भालुओंसे मिलती-जुलती जातियोंकी भी कुछ सेना इकट्ठा हो गई । वारीकीके साथ सीताकी खोज करनेके लिए सुग्रीवने मुख्य-मुख्य वानरोंको चारों दिशाओंमें विदा किया । सवसे कहा कि एक महीनेके अन्दर पता लगाकर लौटें; पता न लगने पर देहान्त-दण्डके लिए तैयार रहनेकी धमकी दी । खयाल यह था कि वहुत करके सीता लंकामें होंगी, इसलिए सुग्रीवने हनुमान, अंगद आदि वलवान वानरोंको और जाम्ववान आदि भालुओंको उसी दिशामें भेजा । सीताके मिलने पर उन्हें अपना परिचय देनेकी दृष्टिसे रामने हनुमानको अपनी अंगूठी दी ।

११. अनेक पराक्रम करते हुए वानर आखिर रामेश्वर जा पहुंचे । समुद्र लांघकर उस पार जाना था । सव सोचने लगे कि इतना विशाल पट कौन लांघ सकेगा ? आखिर जाम्ववानकी सलाहसे यह काम हनुमानको सौंपा गया ।

भारी साहससे काम लेकर हनुमान समुद्र लांघकर लंका जा पहुंचा। रावणकी राजधानीमें पहुंचकर उसने जगह-जगह सीताकी खोज की। वह रावणके अन्तःपुरमें भी टोह लगा आया, किन्तु कहीं भी सीताका पता न चला। आखिर वह अशोक-वनमें जा पहुंचा। वहां भयंकर राक्षसियोंसे रक्षित एक घरमें उसने सीताको देखा। उनकी स्थिति दयाजनक थी। उन्होंने एक पीला और मैला वस्त्र पहन रखा था। उपवासके कारण उनके अंग-प्रत्यंग दुर्बल हो गये थे। उनके हृदयसे बार-बार लम्बे निःश्वास निकलते थे। उनके शरीर पर सौभाग्य-सूचक एक भी आभूषण नहीं था। उनके बाल खुले और अस्तव्यस्त रूपमें लटक रहे थे। वे इस तरह त्रस्त नजर आती थीं, मानो बाघिनोंके झुण्डमें बैठी हुई कोई हरिणी हो। वे नंगी जमीन पर मुंह लटकाये उदास भावसे बैठी हुई थी। साध्वीकी ऐसी दशा देखकर वीर किन्तु दयालु हनुमानकी आंखोंसे आंसू बह चले।

सीताकी खोज

२. किन्तु यह सोचकर कि तत्काल प्रकट होनेका अवसर नहीं है, हनुमान एक पेड़ पर छिपकर बैठ गया और देखने लगा कि अब क्या होता है। इतनेमें रावण वहां आ पहुंचा। वह फिर सीताको ललचाने और धमकाने लगा। सीताने उसे धर्म-मार्गसे

हनुमानका मिलाप

चलनेके लिए अनेक प्रकारसे समझाया; पर इससे वह अधिक क्रोधमें आ गया और राक्षसियोंको सीता पर भारी जुल्म करनेका आदेश देकर चला गया। राक्षसियां भी सीताको सतानेमें अपनी ओरसे कोई कसर नहीं रखती थीं; किन्तु उनमें त्रिजटा नामक एक ऐसी राक्षसी थी, जिसमें थोड़ी मनुष्यता शेष थी। वह न केवल सीताके दुःखमें सहानुभूति रखती थी, बल्कि दूसरी राक्षसियोंको भी अत्याचार करनेसे रोकती थी। कई महीनोंसे रामकी ओरसे कोई समाचार न मिलनेके कारण सीता अब निराश हो चुकी थीं और रावणके व्यवहारके कारण आज जो घटना घटी थी, उसके बाद तो वह आत्महत्या करनेका विचार करने लगी थीं। अतएव हनुमानने सोचा कि सीताके चरणोंमें उपस्थित होनेका यही अनुकूल अवसर है। लेकिन यह सोचकर कि अचानक सामने जा पहुंचनेसे कहीं सीता घबरा न जायें, उसने शुरूमें पेड़ परसे ही रामका संक्षिप्त चरित्र गाना शुरू कर दिया। आवाज सुनकर सीता चकित आंखोंसे इधर-उधर देखने लगीं। जब कोई दिखाई न पड़ा, तो मारे डरके 'हे राम' कह कर जमीन पर गिर पड़ीं। इसी बीच हनुमान पेड़ परसे नीचे उतरा और करुणा-पूरित भावसे विनयपूर्वक नमस्कार करके सीताके सामने खड़ा हो गया और राम तथा लक्ष्मणके अनुचरके रूपमें अपना परिचय देकर सारे समाचार सुनाये। जब सारे चिह्न मिल गये और सीताने रामकी मुद्रिका भी देख ली, तो उन्हें विश्वास हो गया कि हनुमान कोई मायावी राक्षस नहीं, बल्कि रामका दूत ही है। इससे सीताके आनन्दका पार न रहा।

सीताने हनुमानके साथ पेट भरकर बातें की। हनुमानने बताया कि उन्हें छुड़ानेके लिए राम किस प्रकारकी कोशिश करेंगे। दूसरी तरफ सीताने अनुनय-विनयके साथ रामको यह संदेशा भेजा कि अब वे किसी भी हालतमें अधिक विलम्ब न करें।

हनुमान और राक्षसोंके बीच युद्ध

३. इसके बादका वर्णन यह है कि सीताका पता तो चल गया, लेकिन हनुमानके मनमें एक अविचारपूर्ण कल्पना यह उठी कि वापस लौटनेसे पहले रावणको भी अपने पराक्रमका कुछ स्वाद चखा देना चाहिये। सीताकी अनुमति लेकर हनुमानने अशोक वाटिकाके पेड़ उखाड़ कर उसे उजाड़ना शुरू किया। यह देखकर राक्षसियां घबराईं और दौड़ी-दौड़ी रावणके पास पहुंचीं। जब रावणको पता चला कि उसकी आज्ञाके बिना सीतासे बात करनेवाला और उसके उपवनको उजाड़नेकी हिम्मत रखनेवाला कोई ढीठ वानर लंकामें आया है, तो उसे बहुत ही गुस्सा हो आया। उसने राक्षसोंको हुक्म दिया कि वे हनुमानको पकड़कर ले आयें। राक्षस हनुमान पर टूट पड़े; पर हनुमानने अपनी पूंछके प्रहारसे ही कई राक्षसोंको ढेर कर दिया और फिर एक राक्षससे उसका आयुध लेकर उसके द्वारा राक्षसोंका संहार शुरू कर दिया। देखते-देखते भयंकर युद्ध शुरू हो गया। रावणके अक्षय आदि राजकुमार और सेनापतिका पुत्र आदि कई राक्षस योद्धा मृत्युलोकको सिधार गये। अन्तमें युवराज इन्द्रजित भी हनुमानसे लड़ने आ पहुंचा। दोनोंके बीच घनघोर युद्ध छिड़ गया। आखिर इन्द्रजितने हनुमानको बांध लिया।

लंका-दहन

४. हनुमानको पकड़कर रावणके पास ले जाया गया। हनुमाननें रावणको समझाया कि वह सीताको छोड़ दे और अपने अधर्म तथा अन्यायके लिए पश्चात्ताप करे। पर इससे तो रावण और भी ज्यादा आगबबूला हो गया और उसनें हनुमानका वध करनेकी आज्ञा दे दी। इस पर विभीषणनें आपत्ति की और कहा कि दूतका वध करना निषिद्ध है। सच पूछा जाये, तो हनुमान दूतके रूपमें पहुंचा ही नहीं था। वह तो जासूसी करने गया था। फिर उसने अशोक वाटिकाको जिस तरह उजाड़ा था, उसका कोई बचाव हो नहीं सकता था। फिर भी कथा यह है कि रावणने विभीषणकी आपत्तिको मान लिया और वध करनेके बदले हनुमानकी पूंछ जला डालनेकी आज्ञा की। हनुमानकी पूंछ पर चिथड़े लपेटे गये। उन पर तेल उंड़ेला गया और फिर उसमें आग लगा दी गई। जैसे ही पूंछ जलने लगी, हनुमानने एक छलांग भरी और आसपास खड़े हुए राक्षसोंके कपड़ोंमें आग लगा दी। बादमें उसने घरोंकी छतों पर छलांग मारी और घर जलाने शुरू किये। थोड़ी ही देरमें किलकारियां मारता हुआ हनुमान हजारों घरों पर घूम गया और उसने सबकी राजधानीमें आग लगा दी। अन्तमें बड़े वेगसे समुद्र किनारे पहुंचकर उसने अपनी पूंछ समुद्रमें बुझा ली। फिर तो समुद्र लांघ कर हनुमान उस पार बैठे हुए अंगद, जाम्बवान आदिसे जा मिला।

५. थोड़ी ही देरमें सब साथियोंको हनुमानकी सफलताका [illegible] चल गया। वानरोंके हर्षकी कोई सीमा नहीं रही।

रामका उपहार

राम और सुग्रीवको यह शुभ समाचार सुनानेके लिए सारा दल चल पड़ा। आनन्द ही आनन्दमें उन्होंने सुग्रीवके कई फलदार पेड़ोंको, जो उनके रास्तेमें पड़े, नष्ट कर दिया। लेकिन यह कहकर कि हनुमानने जो भारी पराक्रम किया था, उसकी तुलनामें यह नुकसान किसी बिसातमें नहीं है, सुग्रीवने उल्टे उन्हें प्रोत्साहित ही किया। रामने भी हनुमानको गले लगा लिया। उन्होंने कहा—"तुम्हारे इस कामके बदलेमें मैं तुम्हें क्या दूं? अपने हृदयमें स्थान देनेके अतिरिक्त दूसरी ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तुम्हारे इस पराक्रमके लिए पूर्ण उपहारका काम कर सके। इसलिए आजसे मैं तुम्हें अपना हृदय ही अर्पित करता हूं।"

युद्धकाण्ड

अब राम युद्धके लिए वानर-सेना तैयार करने लगे। रामेश्वरमें वानरोंकी छावनियां खड़ी हो गईं।

युद्ध-मन्त्रणा

२. इस तरफ रावण भी इस चिन्तामें पड़ा कि अगर रामने हमला किया, तो क्या करना चाहिये। उसने अपने भाइयों और मन्त्रियोंकी सभा बुलाई। मन्त्री रावणका स्वभाव जानते थे। अभिमानी और समृद्धिशाली लोग सलाह तो मागते हैं, पर वे सच्ची सलाह सहन नहीं कर सकते। जिस सिखावन द्वारा उन्हें उनकी भूल दिखाई जाती है, वह उनको रुचती नहीं। उन्हें तो वे ही लोग सच्चे सलाहकार मालूम होते हैं, जो

उनकी हां में हां मिलाते हैं और उनकी गलतियोंको भी राजनीतिज्ञता और शक्तिकी निशानी बताते हैं। मन्त्रियोंने रावणको रुचनेवाली सलाह ही दी। उन्होंने रावणके बल और पराक्रमकी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करके उसे समझाया कि राक्षसोंको मनुष्यों और वानरोंसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं है, इसलिए निश्चिन्त रहना ठीक होगा। लेकिन रावणके भाई कुम्भकर्ण और विभीषणको यह सलाह अच्छी नहीं लगी। उन्होंने सीताके हरणकी निन्दा की और सीताको लौटाकर सारे देश पर मंडरानेवाली आफतको टालने और न्यायोचित व्यवहारका मार्ग अपनानेकी सलाह दी। कुम्भकर्ण तो सलाह देकर चुप बैठ गया। उसके विचारमें, राय न मानने पर भी उसका अपने भाईके पक्षमें रहना ही ठीक था। विभीषणने विशेष आग्रह किया। उसने इतने आग्रहके साथ रावणको उलाहना दिया कि रावण उस पर चिढ़ गया और उसने कुल-कलंक कहकर उसे धिक्कारा।

३. विभीषणने देख लिया कि रावणको समझाना सम्भव नहीं है, इसलिए अपने चार मित्रों सहित उसने लंका छोड़ दी और वह रामसे जा मिला।

विभीषण रामके पक्षमें

विभीषणकी प्रामाणिकताका निश्चय हो जाने पर रामने लंकाके राजाके रूपमें उसका जय-घोष किया।[1]

४. इस प्रकार विभीषणका आ मिलना रामके लिए बहुत ही उपकारक सिद्ध हुआ। उन्हें विभीषणसे रावणकी

---

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी–४।

शक्तिकी पूरी-पूरी जानकारी मिल सकी । विभीषणकी ही सलाहसे और नल नामक एक उत्तम वानर शिल्पीकी मददसे रामने समुद्र पर सेतु बंधवाया और उसके सहारे अपनी सेना लंकामें पहुंचाई । सुवेल नामक पर्वत परसे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि लंकाका निरीक्षण भलीभांति कर सकते थे ।

अंगदकी संधि-वार्ता

५. रामने तुरन्त ही लंकाके चारों ओर मजबूत घेरा डाल दिया । उन्होंने ऐसा कड़ा बन्दोबस्त किया कि एक चिड़िया भी अन्दर न जा सके । लेकिन किले पर हमला करनेसे पहले अन्तिम साम-उपायकी दृष्टिसे उन्होंने अंगदको संधि-वार्ताके लिए भेजा । अंगद रावणके पास गया । उसने उसे समझाया, पर उस अभिमानी राजाने कुछ न माना ।

युद्ध

६. रामने सेनाको लंका पर धावा बोलनेकी आज्ञा दी । दोनों ओरसे घनघोर युद्ध शुरू हो गया। रावणके योद्धा एक-एक करके खेत होने लगे । आखिर रामके हाथों कुम्भकर्ण भी मारा गया । रावणका ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजित, जो अजेय माना जाता था और जिसने यह वरदान पाया था कि बारह वर्ष तक जागने और ब्रह्मचर्य पालनेवाला पुरुष ही उसे मार सकता है, वह भी लक्ष्मणके हाथों मारा गया । अब खुद रावणको लड़ाईके मैदानमें आना पड़ा । उसने लक्ष्मण पर एक तीक्ष्ण शक्ति फेंकी । वह लक्ष्मणकी छातीमें घुस गई और लक्ष्मण मूर्च्छित हो गया । इससे रामको भारी निराशा हुई । किन्तु

हनुमानके पराक्रमसे संजीवनी औषधि मिल गई। उससे लक्ष्मणकी छातीका शल्य निकल गया और वह फिर होशमें आ गया। लक्ष्मणके सजीवन होनेकी बात सुनकर रावणका क्रोध बढ़ गया। वह यह कहकर सीताको मारने दौड़ा कि मैं चाहे मर जाऊं, पर सीताको तो रामके हाथमें कदापि नहीं जाने दूंगा। किन्तु उसके सचिवने उसे समझाया कि इतने पापोंमें स्त्री-हत्याका पाप न बढ़ाना ही ठीक होगा। यह सुनकर वह लौट पड़ा और फिरसे युद्धके लिए रामके सम्मुख आकर खड़ा हो गया। राम और रावणके बीच भयंकर युद्ध हुआ। आखिर रामने रावणकी नाभिमें एक अचूक वाण मारा। इस वाणके लगते ही रावणका शरीर निष्प्राण हो कर रणक्षेत्र पर गिर पड़ा। इस प्रकार उस राज्य-लोभी, गर्विष्ठ और कामान्ध राजाने अपने अन्याय और अधर्मका दण्ड सहन किया।

सीताकी दिव्य परीक्षा

७. राम और विभीषणका जय-जयकार हुआ। रामने लक्ष्मणसे विभीषणका अभिषेक करवाया। उन्होंने आज्ञा की कि सीताको स्नान करवाकर और उत्तम वस्त्रालंकार पहनाकर उनके पास भेजा जाये। सीताकी इच्छा बिना किसी शृंगारके रामके पास जानेकी थी, किन्तु रामकी आज्ञा सिर-माथे चढ़ाकर उन्होंने वस्त्रालंकार धारण किये। विभीषणने उन्हें एक पालकीमें बैठाकर रामके पास भेजा। सेनाके वीरोंको [illegible] [illegible] पालकीके कारण वानरोंको बहुत कष्ट होने लगा। रामसे यह देखा नहीं गया। उन्होंने आज्ञा की कि सीता पैदल

चलकर आये । सदाकी आज्ञा-परायण देवी सीता पैदल चलकर रामके पास पहुंची और हाथ जोड़कर खड़ी रही । लेकिन इस समय राम बिलकुल बदल गये थे । जो राम 'सीता, सीता!' पुकार कर शोकसे विकल हो उठे थे, जिन्होंने सीताको फिरसे पानेके लिए इतने पराक्रम किये थे, उन्हीं रामने जब स्वयं सीता उनके सामने आकर खड़ी हुई, तो उनकी ओर आख उठाकर देखा तक नही । उल्टे, अपनी वाणीमें गम्भीर कठोरता लाकर उन्होंने कहा — "सीता, मैंने यह सारा प्रयत्न तुम्हारे लिए नही किया । तुम्हारे हरणसे मेरे पुरुषार्थ पर और मेरे कुल पर जो कलंक लगा था, उसे धो डालनेके लिए ही मैंने यह विकट परिश्रम किया है । किन्तु तुम्हारी शुद्धताके बारेमें मेरे मनमें संशय है, इसलिए मैं तुम्हें स्वीकार नही करूंगा । तुम्हें जहा जाना हो, वहां जानेकी मैं तुम्हें अनुमति देता हूं ।" निरन्तर प्रेमल और मधुरभाषी रामके मुंहसे ऐसे कठोर वचन सुननेकी आशा सीताने बिलकुल नही की थी । उनका शरीर रोष और दुःखसे कांपने लगा । अन्तमें उन्होंने अग्नि-प्रवेश द्वारा अपनी शुद्धिका प्रमाण देनेका निश्चय किया । चन्दनकी लकड़ियोंकी एक चिता रची गई । सीताने दोनों हाथ जोड़कर अग्निकी और रामकी प्रदक्षिणा की । फिर देवों और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके बोली—" हे अग्निदेव, मेरा चित्त श्री रामचन्द्रके चरणोंके सिवाय अन्य किसीमें कभी भी रमा न हो, तो ही आप मेरी रक्षा कीजिये । यदि मैं अशुद्ध न होऊं, तो ही आप मुझे बचाइये ।" इतना कहकर सीताने अग्निमें प्रवेश किया । उनकी परीक्षा पूरी हुई । अग्निने उन्हें

स्पर्श तक नहीं किया और सबको उनकी निष्कलंकताका विश्वास करा दिया। राम, लक्ष्मण और समूची वानर सेनाके हर्षका पार नहीं रहा। रामने अत्यन्त आनन्दके साथ सीताको अंगीकार किया।

८. अब चौदह साल भी पूरे हो रहे थे। विभीषणने अपना पुष्पक विमान सजाया और सबको अयोध्या पहुंचानेकी तैयारी की। वह स्वयं और वानर भी रामके साथ अयोध्या जानेको तैयार हुए। विमान आकाश-मार्गसे उड़ा और थोड़े ही समयमें कोसल देशके समीप आ पहुंचा। अयोध्याके दीखते ही सबने अपनी पुण्य मातृभूमिको प्रणाम किया। भरद्वाज-आश्रमके दर्शन करनेके लिए सब विमानसे नीचे पृथ्वी पर उतरे। निश्चय किया कि एक दिन वहां रहकर दूसरे दिन सब अयोध्या पहुंचेंगे। भरतको पहलेसे खबर पहुंचाने और उनके मनोभावकी परीक्षा करनेके लिए रामने हनुमानको आगे भेजा। हनुमानने भरतको एक अरण्यमें पाया। व्रतके कारण उनका शरीर सूख गया था, माथे पर जटाका भार था, वे साक्षात् धर्ममूर्ति-से लगते थे। रामके आगमनके शुभ समाचार सुनते ही भरत आनन्द-विभोर होकर मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देर बाद मूर्च्छा टूटी, तो उन्होंने हनुमानको कसकर गले लगाया और उन्हें हजार गायें और सौ गांव इनाममें दिये। उन्होंने [illegible] ही नगरमें सन्देशा भेज दिया और समूचे नगरमें रामके [illegible]की तैयारियोंकी धूम मच गई। अयोध्याके लिए वह दिन दीवालीका दिन बन गया। आज राजा-प्रजा,

अयोध्या-गमन

माता-पुत्र, सास-बहू, भाई-भाई, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी और मित्र-मित्रका परस्पर मिलाप होनेवाला था। चौदह वर्षों तक अपार दुःख सहनेके बाद आज आनन्दका यह दिन आया था। इनका महोत्सव अवर्णनीय रहा। 'राजा रामचन्द्रकी जय!' की जो गर्जना उस दिन उठी थी, वह आज तक शान्त नहीं हुई है। उसी दिन गुरु वसिष्ठने रामचन्द्रका राज्याभिषेक किया। रामने सुग्रीव, बिभीषण, जाम्बवान, हनुमान आदि सब मेहमानोंको पुष्कल रत्नालंकार दिये। सीताने अपना मोतियोंका हार हनुमानके गलेमें पहनाया और उनका जय-जयकार कराया। हनुमानके नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके परिणाम-स्वरूप उनमें जिस बल, बुद्धि, तेज, धैर्य, विनय और पराक्रमका विकास हुआ था, उसीके कारण सीताको स्वतंत्रता मिली थी। तभीसे राम, लक्ष्मण और सीताके साथ हनुमानका नाम भी अमर हो गया।

९. फिर तो श्री रामचन्द्रने इतनी उत्तम रीतिसे राज्य किया कि उनकी सारी प्रजा सुख और आनन्दमें रहने लगी। राम-राज्यमें एक भी विधवा स्त्री दिखाई नहीं पड़ती थी। सांपका या बीमारीका भय नहीं था। कोई आदमी दूसरे किसीका माल चुराकर या अन्यायपूर्वक लेता नहीं था। उनके राज्यमें सब प्रकारके अनर्थ मिट गये थे। बूढ़ोंसे पहले जवानोंके मरनेके अनिष्ट प्रसंग खड़े ही न होते थे। धन-धान्य, फल-फूल और बाल-बच्चोंकी वृद्धि होने लगी। इस प्रकार समूचे राज्यमें सुख और नीतिकी वृद्धि होनेसे लोग प्रसन्न रहने लगे। श्री रामचन्द्रने दस अश्वमेध यज्ञ करके अक्षय कीर्ति प्राप्त की और दीर्घायुष्य भोगकर वे वैकुण्ठ सिधारे।

उत्तरकाण्ड

मूल वाल्मीकि रामायण यहीं समाप्त होती है। राजाके रूपमें रामचन्द्रका वर्णन उत्तरकाण्ड नामक रामायणके अन्तिम प्रकरणमें मिलता है। किन्तु विद्वानोंका मत है कि वह समूचा काण्ड प्रक्षिप्त है। फिर भी उसकी प्रसिद्धिको देखते हुए यहां उसके अनुसार रामके जीवनका वर्णन दिया गया है।

नगर-चर्चा

२. आगे चलकर जब सीताको गर्भ रहा, तो राज-परिवारमें आनन्द छा गया। एक दिन सीताने इस प्रसंगके बहाने रामके सम्मुख अपनी यह इच्छा प्रकट की कि गंगा-किनारे रहनेवाले ब्राह्मणोंको वस्त्र दिये जायें। रामने तुरन्त ही सीताको भेजनेकी व्यवस्था करनेका वचन दिया और स्वयं राज-सभामें चले गये। सभामें एक दूत नगरमें घूमकर तुरन्त ही आया था। रामने उससे सहज ही पूछा कि लोग उनके बारेमें क्या कहते हैं। उसने हाथ जोड़कर कहा — "महाराज! लोग आपके पराक्रमकी बहुत प्रशंसा करते हैं। समुद्र पर सेतु बनवाने, रावण और कुम्भकर्ण-जैसे राक्षसोंका वध करने और वानरों तथा भालुओंके साथ मित्रता करनेकी आपकी कुशलताके लिए वे बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हैं। किन्तु एक साल तक रावणके घरमें कैद रही सीताको छुड़ाकर आपने उनको पुनः अंगीकार किया, इसके लिए वे आपको दोष देते हैं और यह भी कहते हैं कि जब स्वयं रामने इस प्रकार किया है, तो हमें वैसा करनेमें क्या हानि है?"

३. दूतके इन वचनोंको सुनकर रामचन्द्र बहुत दुःखी हुए। उन्होंने सभा विसर्जित कर दी और बड़ी देर तक एकान्तमें बैठकर विचार करते रहे। फिर कुछ निश्चय करके उन्होंने अपने भाइयोंको बुलवा भेजा। भाइयोंसे लोकापवादकी बात कह कर बोले — "सत्कीर्तिके लिए मैं तुम्हारा भी त्याग करते हिचकिचाऊंगा नहीं, तो फिर सीताकी तो बात ही क्या? इसलिए लक्ष्मण, कल सवेरे सीताको रथमें बैठाकर गंगा पार, तमसा नदीके किनारे, वाल्मीकि ऋषिके आश्रमके पास अरण्यमें छोड आओ। सीताने वहा जानेकी इच्छा प्रकट की है, इसलिए वह खुशी-खुशी जायेगी।"

सीताका वनवास

४. दूसरे दिन सवेरे बेचारे लक्ष्मण शोकातुर चेहरा लिये, रोती आंखों, निःशंक सीताको रथमें बैठाकर वाल्मीकिके आश्रमकी ओर चल दिये। उस प्रदेशमें पहुंचते ही लक्ष्मणने सीताको साष्टाग प्रणाम किया और हाथ जोड़े। वे कुछ कहना चाहते थे, पर 'हे सीता माता' इतना ही कह पाये। उनका गला रुंध गया। सीता बार-बार उनके शोकका कारण पूछने लगीं, तब बड़े कष्टके साथ उन्होने सीताको रामकी आज्ञा सुनाई। दोनो उस अरण्यमें बड़ी देर तक शोकमें डूबे रहे। अन्तमें सीताने धैर्य धारण करके लक्ष्मणको विदा किया। उन्होंने कहलवाया — "सब सासोंको मेरे प्रणाम कहिये और उन परम धार्मिक राजाको मेरी ओरसे यह सदेश पहुंचाइये कि 'महाराज! सब लोगोंके सामने अग्निमें प्रवेश करके मैंने अपनी शुद्धता सिद्ध कर दिखाई थी, फिर भी लोकापवादके डरसे

आपने मेरा त्याग किया है, तो वह मुझे सर्वथा स्वीकार है। लोकापवादसे सत्कीर्तिको कलंकित न होने देनेकी आपकी इच्छा सर्वथा उचित है और राजाके नाते वह आपका परम धर्म है । मैं भी चाहती हूं कि आपकी कीर्ति कलंकित न हो। अतएव अपने त्यागके लिए मैं आपको तनिक भी दोष नहीं देती । आगे पत्नीके रूपमें आप मुझ पर प्रेम न रख सकें, तो भी अपने राज्यकी एक साधारण तपस्विनीके नाते ही आप मुझ पर कृपादृष्टि रखिये ।' "[१]

५. पुष्कल अश्रुपातके बाद आखिर लक्ष्मण लौटे। उसके बाद एक पेड़के नीचे बैठकर सीताने रोना शुरू किया।

वाल्मीकिके आश्रममें

वाल्मीकिके कुछ शिष्योंने सीताका वह रुदन सुना । उन्होंने वाल्मीकिको खबर दी। करुणामूर्ति वाल्मीकि वहां पहुंचे और सीताको ढाढ़स बंधाकर अपने आश्रममें ले आये। उन्होंने सीताके लिए एक झोंपड़ी बनवा दी और उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी । वहां सीताके दो पुत्र हुए। वाल्मीकिने उनके नाम लव और कुश रखे और उन्हें पढ़ा-लिखा कर होशियार बनाया । दोनों भाई क्षात्र-विद्यामें और संगीत-विद्यामें निपुण हो गये ।

६. चौथे दिन लक्ष्मण अयोध्या वापस आये और रामको सीताका सन्देश सुनाया । रामने ये चारों दिन गहन शोकमें बिताये थे और राज-काजमें कुछ भी ध्यान नहीं दिया था। लेकिन जो राजा प्रजाकी पुकार नहीं सुनता, वह नरकमें

१. [illegible]

पड़ता है, इस शास्त्र-वचनके याद आने पर उन्होंने धैर्य धारण किया और फिरसे राज-काजमें लग गये। उनके राज्य-कालमें शत्रुघ्नने मथुराके निकटवर्ती प्रदेशके लवण राजाको मार कर उस पर अपना अधिकार जमाया था। इस पराक्रमके बदलेमें रामने उस प्रदेशका राज्य शत्रुघ्नको सौंप दिया।

७. जिन दिनों उत्तरकाण्ड लिखा गया होगा, उन दिनों त्रिवर्णोंके मनमें शूद्रोंके प्रति जो तिरस्कारकी भावना थी, उसका पता नीचे लिखी घटनासे चलता है।

शम्बूक-वध

८. एक दिन एक ब्राह्मण बारह-तेरह सालके अपने बालकका शव लेकर राज-सभामें आया और मां-बापके जीते-जी अल्पायु बालककी मृत्युके इस अनहोने प्रसंगका कारण वह रामसे पूछने लगा। उसने कहा—

"माता-पिताके नाते हमें याद नही पड़ता कि हमने कभी असत्य भाषण किया है अथवा दूसरा कोई पाप किया है, इसलिए यह अनर्थ राजाके दोषके कारण ही हुआ होगा। राजा जो पाप करता है अथवा उसके शासनमें जो पाप किया जाता है, उसका दुष्ट फल प्रजाको भोगना पड़ता है।" न्याय-प्रेमी राजा सोचने लगे कि उनसे ऐसा कौन-सा पाप हुआ है, जिसके परिणाम-स्वरूप इस ब्राह्मणका यह बालक छोटी उमरमें ही मर गया। कथा यों है कि इसी समय नारदने रामसे कहा—"तुम्हारे राज्यमें कोई शूद्र तप कर रहा होगा। पहले कृत-युगमें ब्राह्मण ही तप करते थे। उस युगमें सब लोग दीर्घ दृष्टिवाले, नीरोगी और दीर्घायुषी होते थे। फिर त्रेता-युगमें क्षत्रिय भी तप करने लगे। इससे ब्राह्मण और

क्षत्रिय दोनों तप और वीर्यसे सम्पन्न बने। लेकिन इसीके साथ अधर्मने पृथ्वी पर अपना पहला चरण रखा। असत्य भाषण, हिंसा, असन्तोष और कलह, ये चार अधर्मके चरण हैं। इनमें से एक चरणके पृथ्वी पर पड़ते ही त्रेता-युगमें मनुष्योंकी आयुष्य-मर्यादा घट गई। आगे द्वापर-युगमें वैश्य लोग भी तप करने लगे, इससे अधर्मका दूसरा चरण — हिंसा — पृथ्वी पर पड़ा और मनुष्यके आयुष्यकी मर्यादा अधिक घट गई। किन्तु शूद्रको तो कभी भी तप करनेका अधिकार था ही नहीं। मेरे विचारमें, आजकल पृथ्वी पर कोई शूद्र तप कर रहा होगा।" यह सुनकर बालकके शवको तेलमें रखवा कर राम शूद्र तपस्वीकी खोजमें निकल पड़े। घूमते-फिरते वे दक्षिण देशमें पहुंच गये। वहां शम्बूक नामक एक शूद्र स्वर्ग-प्राप्तिके लिए तप कर रहा था। रामने उसे देखते ही उसका सिर उड़ा दिया।

९. इस कार्यके बचावमें उत्तरकाण्डमें यह दलील दी गई है कि बिना तपके सिद्धि नहीं मिलती, यह सिद्धान्त जितना सच है उतना ही सच यह सिद्धान्त भी है कि बिना पात्रताके किसीको तपका अधिकार नहीं होता।

१०. कथाके अन्तमें यह तो लिखा ही है कि शम्बूकके वधसे ब्राह्मणका पुत्र जी उठा![1]

११. इसके बाद रामने अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय किया। सीताके स्थान पर सुवर्ण-मूर्ति स्थापित करके यज्ञा

[1] [illegible]

अश्वमेध

श्रीगणेश किया गया । यज्ञ एक वर्ष तक चला । इस यज्ञको देखनेके लिए वाल्मीकि अपने शिष्यों सहित आये । उनके साथ लव और कुश भी थे । वाल्मीकिने अपना रामायण दोनों कुमारोंको सिखाया था, जिसे वे वाद्यके साथ गाते हुए नगरमें जगह्-जगह् सुनाते थे । उनके सुन्दर गानकी प्रशंसा रामके कानों तक पहुची । रामने उन बालकोंको बुलवा भेजा और सबकी उपस्थितिमें यज्ञ-मण्डपमें रामायण गानेकी आज्ञा की । वे दोनों बालक रामके प्रतिबिम्ब-रूप ही थे । रामके मनमें शका उठी कि शायद ये उनके ही पुत्र है । इसलिए उन्होंने वाल्मीकिको सदेशा भेजा कि उनकी अनुमति हो तो सीता अपनी शुद्धताके बारेमें 'दिव्य' करे । वाल्मीकिने रामकी यह मांग मंजूर कर ली । दूसरे दिन यज्ञ-मण्डपमें सभा जुड़नेके बाद महाकवि वाल्मीकिके पीछे हाथ जोड़ कर, आंखोंसे आंसू बहाती हुई सीता नीचा मुंह किये सभामें आई । सभाके बीच खड़े हो कर वाल्मीकिने कहा — "हे दाशरथि राम, अपनी इस पतिव्रता और धर्मशीला पत्नी सीताको लोकापवादसे डर कर जबसे तुमने अरण्यमें भेज दिया था, तबसे यह मेरे आश्रममें ही रही है । ये दोनों तुम्हारे ही पुत्र हैं । आज तक मैं कभी झूठ बोला नही हूं । मैं कहता हूं कि यह वैदेही सब प्रकारसे निष्पाप और शुद्ध है। यदि यह असत्य हो, तो मेरी हजारों वर्षोंकी तपस्या निष्फल हो जाये । यह सीता भी तुम्हें अपनी पवित्रताकी प्रतीति करायेगी ।"

रामायणका गान

सीताका दूसरा 'दिव्य'

१२. बादमें गेरुए वस्त्र धारण की हुई, शोक और तपसे अत्यन्त कृश बनी हुई और आंखोंको जमीन पर गड़ा कर खड़ी हुई सीता आगे बढ़ीं और दोनों हाथ जोड़ कर ऊंचे स्वरमें बोलीं—"हे धरती माता! यदि रामचन्द्रके अतिरिक्त दूसरे किसी भी पुरुषका मैंने आज तक चिन्तन न किया हो, तो मुझे अपने उदरमें आश्रय दो ! यदि आज तक मैंने मन, वचन और कर्मसे रामचन्द्रको ही चाहा हो और रामचन्द्रके अतिरिक्त दूसरे किसी भी पुरुषको मैं पहचानती तक नहीं, यह बात यदि अक्षरशः सच हो, तो तुम मुझे अपने उदरमें आश्रय दो !" इस तरह सीताने तीन बार कहा। इसके साथ ही धरती फटी और सीता उसमें समा गई। इस प्रकार सीताका यह दूसरा कठोर 'दिव्य' भी पूरा हुआ और वह राम एवं उनकी प्रजाके लिए जन्म-पर्यन्त अनुतापका कारण बना। राजा-प्रजा दोनोंने भारी शोक मनाया, किन्तु सीता तो गई, सो गई।

लक्ष्मणका त्याग और देहान्त

१३. उत्तरकाण्डके अनुसार रामका अन्तकाल भी दुःखपूर्ण ही रहा। एक दिन एक मुनि रामसे एकान्तमें चर्चा करनेके लिए आये। उन्होंने पहले ही यह वचन ले लिया था कि जो कोई उनकी बातचीतमें बाधा डालेगा, उसे देहान्त दण्ड दिया जायेगा। इसीके अनुसार रामने लक्ष्मणको दरवाजे पर पहरा देनेके लिए बैठा दिया था। दोनोंकी चर्चा चल ही रही थी कि [illegible] मिलनेके [illegible] स्वभावका [illegible]

हुआ है, वे दुर्वासा मुनि वहा आ पहुंचे और रामसे मिलनेके लिए उतावले हो गये। जब लक्ष्मणने आनाकानी की, तो उन्होंने समूचे राज्यको शाप देनेकी धमकी दे डाली! बेचारे लक्ष्मणकी हालत सांप-छछूंदर-जैसी हो गई। बादमें यह सोचकर कि सारे राज्यको विपत्तिमें डालनेकी अपेक्षा स्वयं विपत्तिमें फंसना अधिक अच्छा होगा, वे रामके पास पहुचे और उन्हें दुर्वासाके आगमनके समाचार सुनाये। दुर्वासाको तो तपस्याके बाद भूख लगी थी, इसलिए वे केवल भिक्षा मागने आये थे। पर उन्होंने यह न सोचा कि उनकी भिक्षामें लक्ष्मणके प्राणोंकी आहुति पड़ेगी। रामके सामने भारी धर्म-सकट खड़ा हो गया। प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्मणको देहान्त दण्ड देना आवश्यक था। किन्तु लक्ष्मणके समान भाईको ऐसा दण्ड देनेकी हिम्मत कौन करेगा? क्या किया जाये? कुछ सूझता नहीं था। अन्तमें रामने सभा बुलवाई और वसिष्ठको एवं प्रजाजनोंको सारी हकीकत कह सुनाई। वसिष्ठने यह रास्ता निकाला कि सज्जनका त्याग उसके वधके समान ही है, अतएव राम लक्ष्मणका त्याग कर दें! तदनुसार रामने लक्ष्मणको अपनेसे दूर हो जानेका दण्ड दिया। आज्ञा सुनते ही लक्ष्मणने रामचन्द्रको प्रणाम किया और सीधे सरयू तट पर पहुचे। स्नान करके पवित्र होनेके बाद उन्होंने दर्भासन पर आसन लगाया और श्वास चढ़ा कर अपना शरीर छोड़ दिया। इस प्रकार बन्धु-भक्ति-परायण शूर सुमित्रानन्दनके जीवनका अन्त हुआ। उन्होंने अपने हृदयमें उमड़नेवाली राम-भक्तिसे प्रेरित होकर राज-वैभवका, माताका और पत्नीका त्याग किया। बारह वर्ष तक

जागरण किया, चौदह वर्ष वनवासमें विताये और जीवनके अन्तिम क्षण तक रामकी सेवा की। बन्धु-भक्तिका आदर्श खड़ा करके लक्ष्मणने लोक-हितके लिए मृत्युका आलिंगन किया। यह समूचा अन्तिम प्रसंग विकृत आदर्श उत्पन्न करनेवाला लगता है।

रामका वैकुण्ठवास

१४. रामने उसी दिन अपना राज्य लव-कुशको और भरत, लक्ष्मण आदिके पुत्रोंको उचित रीतिसे बांट दिया और फिर प्रत्येकका अभिषेक करके वे महाप्रस्थानके लिए घरसे निकल पड़े। उनके पीछे अन्तःपुरकी सब स्त्रियां, सगे-सम्बन्धी और प्रजाजन भी निकल पड़े। रामने सरयूमें अपनी देह विसर्जित की। इसके बाद भरत, शत्रुघ्न और प्रजाजनोंने भी वही मार्ग अपनाया! इस प्रकार राम-चरित पूर्ण हुआ।

रामायणका सार

१५. रामायणमें वाल्मीकिने आर्योंके आदर्श चित्रित किये हैं। दशरथ आर्योंके आदर्श पिता हैं। सुमित्रा आदर्श माता, राम आदर्श पुत्र और राजा, भरत आदर्श बन्धु और मित्र, अन्यायसे असहयोग करनेवाला लक्ष्मण आदर्श सेवक और बन्धु, हनुमान आदर्श दास, सीता आदर्श पत्नी, विभीषण आदर्श सत्याग्रहकार और असहयोगी हैं। इसी प्रकार मनुष्य-जातिमें पाये जानेवाले आसुरी भावोंका चित्रण भी वाल्मीकिने सुन्दर किया है। कैकेयी ईर्ष्याकी मूर्ति, रावण साम्राज्य-मदकी मूर्ति, [illegible] मदकी मूर्ति और सुग्रीव [illegible] [illegible] मानसिक दुर्बलताकी

मूर्ति हैं। अन्यायको जानते हुए भी, मनमें उसके लिए धिक्कारकी भावना होते हुए भी, उसका विरोध करनेके लिए आवश्यक हिम्मतका अभाव मारीचमें प्रकट होता है; नींद, आलस्य, पेटूपन और मोह कुम्भकर्णमें पाये जाते हैं; इन्द्रजितमें आसुरी सम्पत्तिका सार और आंखोंको चौंधियानेवाला प्रकाश है। इसीके साथ वाल्मीकिने राज-परिवारकी व्यवस्थाका आदर्श भी अत्यन्त मनोहर रीतिसे चित्रित किया है। इस आदर्शके अनुसार आर्य राजाका जीवन सुखोपभोगके लिए नहीं है, न जनता उसके सुखका साधन है, बल्कि राजाका जन्म प्रजाके सुखके लिए है। अपने शरीर, परिवार, सुख, सम्पत्ति और सर्वस्वका समर्पण करके उसे प्रजाका पालन करना है। गुरुकी और प्रजाकी धर्मयुक्त सलाहके अनुसार उसे राज-काज चलाना चाहिये। प्रजाका प्रीति-पात्र पुरुष ही राजा बन सकता है। अर्थात् राजाकी नियुक्ति प्रजाकी सम्मतिसे होनी चाहिये। अत्यन्त प्रामाणिकताके साथ और शुद्ध भावसे अपना कर्तव्य पूरा करने पर प्रजाकी ओरसे जो सन्तोष और विशुद्ध प्रेम प्राप्त होता है, वही उसकी सेवाका पुरस्कार है। वह अपने मुकुटके कारण अथवा सिंहासन और छत्र-चंवरके कारण प्रजाका पूज्य नहीं होता; बल्कि अपनी धार्मिकता, कर्तव्य-निष्ठा, शूरवीरता, परदुःख-भंजनता, न्याय और पराक्रमके कारण पूज्य माना जाता है। उसकी पूजा उसके द्वारा प्रसारित आज्ञा-पत्रोंका परिपालन करनेसे नहीं हो सकती, बल्कि सन्तुष्ट प्रजाके चित्तमें उमडनेवाले सहज प्रेमसे ही होती है। अनेक स्त्रियां करनेका दुष्ट परिणाम दशरथके दुःखद अन्तकाल द्वारा

बताया गया है और रामके चरितसे एकपत्नी-व्रतका आदर्श सिद्ध किया गया है। जनक और रामके बीच ससुर-दामादके और कौशल्या तथा सीताके बीच सास-बहूके सम्बन्धको भी कलह-हीन प्रेमके रूपमें प्रकट किया गया है। समूचे राम-चरितका सार और बोध यह है कि जब परिवार और राज्यका कर्ता-पुरुष सत्यनिष्ठ, धार्मिक, निःस्वार्थी, शूर और प्रेमल होता है, तो वह किस प्रकार सबके लिए आशीर्वाद-रूप बन जाता है।

टिप्पणियाँ

बालकाण्ड

टिप्पणी-१ : राक्षस—अर्थात् बहुत जंगली आदमी। उनमें मनुष्यमें पाये जानेवाले शुभ गुणोंका विकास नहीं होता, न उन्हें नैतिक जीवनका ख्याल होता है। वे क्रूर और नरमांस-भक्षक थे। जिस तरह प्राचीन कालमें मनुष्यको सर्प और सिंह-जैसे प्राणियोंके कारण बहुत उपद्रव सहना पड़ता था और फलतः उनका शिकार करके उन्हें नष्ट कर दिया जाता था, उसी तरह अधिक पराक्रमी और नगरों तथा शहरोंको बसानेकी इच्छा रखनेवाली प्रजा ऐसी राक्षस प्रजाओंका शिकार करती थी। इन राक्षसोंका शरीर-बल भारी, डील-डौल ऊंचा-पूरा, किन्तु बुद्धि मन्द और शस्त्र-बल नहींके बराबर होता था। हो सकता है कि विश्वामित्रका विचार किसी नई बस्तीको बसानेका रहा हो और उसमें देवोंकी सहायता प्राप्त करनेके हेतुसे उन्होंने यज्ञारम्भ किया हो। राक्षस भारतवर्षकी असल प्रजा थे। आर्यों द्वारा बस्तियां बसानेका अर्थ यह होता था कि राक्षसोंकी जमीनें छीन ली जायें और उन्हें या तो मार डाला जाये या खदेड़ दिया जाये। इस कारण आर्योंके प्रति उनमें सहज ही शत्रुता रही होगी और इसीलिए वे विश्वामित्रके यज्ञमें बाधक बने होंगे। यह एक कल्पना है। दूसरी कल्पना यह है कि ऊपर जिनका वर्णन किया गया है, उन राक्षसोंकी एक बड़ी बस्ती लंकामें थी। रावण उनका राजा था। वह हिन्दुस्तान पर भी अपना राज्य

स्थापित करना चाहता था और देशके बहुसंख्यक लोगोंके बीच उसने राक्षसोंको बसाया था। ये राक्षस आर्यों पर अत्याचार करते थे और उन्हें कहीं भी सुखसे रहने नहीं देते थे। किन्तु बात इतनी ही हो, तो फिर राक्षस मन्द-बुद्धि या शस्त्रादि साधनोंसे हीन नहीं माने जा सकते। उस दृष्टिसे देखें तो वे अत्यन्त बुद्धिशाली, युद्ध-कलामें निपुण और युद्ध-की सामग्री बनानेमें तथा मायावी (मंत्र-तंत्र) विद्याओंमें कुशल थे।

राक्षस और असुरमें भेद है। असुर साधारण मनुष्य-जैसा ही मनुष्य है। पर वह अतिशय कामी, क्रोधी, लोभी, अन्यायी, निर्दयी और स्वार्थके लिए दूसरोंका सर्वनाश करनेमें भी न हिचकिचानेवाला होता है। राक्षस सिंह या बाघके समान वनचर बलवान मनुष्य है। असुरका अर्थ है, सद्‌गुणरहित मनुष्य। असुर यानी मनुष्यत्वका शत्रु और राक्षस यानी जंगली आदमी। कल्पना यह है कि रावण स्वयं असुर था, पर राक्षसोंको वशमें करके उनका राजा बन गया था। फिर भी प्रायः दोनों शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं।

टिप्पणी–२ : शैव धनुष — अर्थात् शिवका दिया हुआ धनुष या धनुषके किसी प्रकारका नाम ? जैसे बनानेवालेके नामसे बन्दूकोंके नाम पड़ते हैं, ठीक वैसे ही ? शंकाका कारण यह है कि रामायणमें दो बार रामको वैष्णवी धनुष मिलनेकी चर्चा आती है। यह शैव धनुषकी तुलनामें अधिक प्रबल माना जाता था। ऐसा मालूम होता है कि लंकाके युद्धमें कदाचित् रामने इसीका उपयोग किया होगा। सम्भव है कि यह भी विशिष्ट प्रकारका कोई धनुष रहा हो।

टिप्पणी–३ : तपश्चर्या — इसका अर्थ शरीर सुखाना, निराहार रहना, [illegible] करना नहीं है, बल्कि अपने [illegible] लिए [illegible] किसी [illegible] छोड़कर [illegible] और [illegible] करना है। [illegible] [illegible] [illegible]

देवोंकी उपासना भी तपश्चर्या मानी जाने लगी। अनन्य उपासनामें अथवा चिन्तनमें इन्द्रियोंका संयम और विषयोंका त्याग तो आवश्यक होता ही है, लेकिन जैसे-जैसे साधक उपासनामें लीन होता जाता है, वैसे-वैसे स्वाभाविक ही कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि जब उसे न खाने-पीनेका ध्यान रहता है और न सरदी-गरमीका। इस प्रकारके एकाग्र चिन्तनमें से संकल्प सर्वथा सिद्ध होते हैं। जब लोग इसे भूल गये, तो जबरदस्तीसे छोड़ा हुआ आहार और सहन की हुई सरदी-गरमी ही तपश्चर्या मानी जाने लगी। एकाग्र भावसे किया गया विचार, विवेक और चिन्तन ही श्रेष्ठ तप है। ऐसा चिन्तन देहके भानको भुला दे, तो वह इष्ट ही है। गीताके सत्रहवें अध्यायके १४ से १६ श्लोकोंमें तीन प्रकारके तपका जो वर्णन है, वह यहां विचारणीय है।

युद्धकाण्ड

टिप्पणी-४ : विभीषणका आ मिलना — यह कहावत सच है कि 'घर फूटे घर जाये'। इसी कारण विभीषण पर बन्धु द्रोहका अभियोग भी लगाया जाता है। लेकिन अगर किसी मनुष्यको अपने भाईका पक्ष अन्यायपुक्त लगे और वह उसे रोकनेके प्रयत्नमें विफल हो, तो उस हालतमें उसे क्या करना चाहिये ? यदि वह अन्यायी पक्षके साथ काम करता है, तो उसमें स्पष्ट ही चित्तकी अप्रामाणिकता होती है। तटस्थ रहनेमें भी चित्तकी अप्रामाणिकता है ही। पुरुषार्थी और धर्मनिष्ठ मनुष्यका लक्षण यह है कि वह सदा सत्य और न्यायके पक्षमें रहता है। असत्य और अन्यायका विरोध करनेसे अथवा इनसे असहयोग करनेसे मनुष्य अपने कर्तव्यका पूर्ण पालन नहीं कर पाता। उस जमानेमें युद्ध ही न्याय प्राप्त करनेका एकमात्र मार्ग होनेके कारण समाजने उस मार्गको धर्मानुकूल माना था। ऐसी परिस्थितिमें विभीषणके लिए न्याय्य पक्षकी अधिकसे अधिक मदद करनेका मतलब था रामकी ही मदद करना। यदि इससे बन्धु-द्रोह होता है, तो वह निरपाय माना

जायेगा। लेकिन जब यह मान लिया जाता है कि विभीषण राज्यके लोभवश रामसे जाकर मिला था, तो उस दशामें विभीषणका बन्धु-द्रोह दूसरे रूपमें दिखाई देता है। हम यह मान कर विभीषणको दोषी ठहराते हैं कि मनुष्यमें विशुद्ध न्यायप्रियता हो ही नहीं सकती। विभीषण-का कार्य उचित था अथवा अनुचित, इसका आधार इस बात पर है कि वह राज्य-लोभके कारण रामसे जा मिला था या सत्यके कारण।

उत्तरकाण्ड

टिप्पणी–५ : सत्कीर्ति — रामने भाइयोंसे जो शब्द कहे और सीताने रामको जो संदेशा भेजा, इन दोनोंमें सीताके त्यागका एक ही कारण दिया गया है — रामकी सत्कीर्तिकी रक्षा। सत्कीर्तिकी अभि-लाषा कितनी ही उच्च क्यों न हो, किन्तु यदि किसी निर्दोष व्यक्तिके प्रति अन्याय करके ही सत्कीर्तिकी रक्षा होती हो, तो वैसी सत्कीर्ति रक्षा योग्य नहीं मानी जा सकती। रामने कहा कि सत्कीर्तिके लिए वे भाइयोंका भी त्याग कर सकते हैं, तो फिर स्त्रीकी तो बात ही क्या? इससे ऐसा पता चलता है कि जिन दिनों उत्तरकाण्ड लिखा गया, उन दिनों समाजमें स्त्री-जातिके प्रति आदर घट चुका होगा और लोगोंके बीच अच्छे माने जानेके लिए चाहे जैसा अन्याय किया जा सकता है, यह भावना बढ़ी होगी। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह काण्ड उस समय लिखा गया, जब भारतवर्षकी संस्कृतिकी ज्योति मन्द पड़ने लगी थी। सीताने अपने साथ हुए अन्यायको सह लिया और फिर भी रामके प्रति अपनी भक्ति दृढ़ रखी, इससे यह सिद्ध होता है कि आदर्श [illegible] अपनी पुष्टिके लिए किस प्रकारके प्रयत्न [illegible] रहे थे।

टिप्पणी–६ : नारद — [illegible] नारदके नामके साथ [illegible] है। [illegible] नारद [illegible] है, [illegible] नारद 'भागवत' [illegible] [illegible] दिखाई [illegible] है।

पुराणोंके अनुसार वे ही नारद वाल्मीकिके समान लुटेरेके और दैत्य-पुत्र प्रह्लादके तारणहार भी थे।

नारदके सम्बन्धकी अनेक पौराणिक कथाओं पर विचार करते हुए मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि अधिकांश स्थानोंमें नारदके रूपमें मनुष्य-के मनका ही वर्णन किया गया है। मनुष्यका मन ही कलह करानेवाला है। वह अच्छे विचार भी उत्पन्न करता है और बुरे विचार भी। वही शंकायें खड़ी करता है, डराता है और हिम्मत भी बधाता है।

•

यहां यह शंका खड़ी हो सकती है कि तपके कारण पृथ्वी पर अधर्मका चरण पड़ ही कैसे सकता है? तपका हेतु तो सत्यकी शोध करना ही होना चाहिये। इसके स्थान पर जब मलिन हेतुओंकी सिद्धि-के लिए, दूसरोंको सतानेके लिए अथवा सांसारिक सुख, शक्ति आदिके लिए तप किया जाता है, तब तपका अर्थ भी बदल जाता है, प्रकार भी बदल जाता है और वह अधर्मका पोषक बन जाता है। अपने किसी संकल्पकी सिद्धिके लिए एकाग्र चित्तसे जो-जो भी उपाय किये जाते हैं, वे सब तपकी श्रेणीमें आते हैं। गीताके सत्रहवें अध्यायके सत्रहवेंसे उन्नीसवें श्लोक तक सात्त्विक, राजस और तामस तपका जो विवेचन किया गया है, वह यहां विचारणीय है।

हमारी यह मान्यता है कि सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंमें से एक या दोकी प्रधानताके आधार पर मनुष्यके चार वर्णोंका सहज निर्माण हुआ है। इसके अनुसार सत्त्व-प्रधान मनुष्य ब्राह्मण, सत्त्व-रज-प्रधान क्षत्रिय, रज-तम-प्रधान वैश्य और तम-प्रधान शूद्र माना गया है। यदि कोई तम-प्रधान मनुष्य किसी मलिन हेतुसे तप करता हो, तो राजाका कर्तव्य है कि प्रजाकी रक्षाके लिए वह उसे वैसा करनेसे रोके; नहीं तो अधर्म बढ सकता है। इस कथाका यही तात्पर्य हो सकता है। लेकिन जिस तरह यह कथा रची गई है, वह किसी भी रूपमें मान्य करने योग्य नहीं है। इसमें वर्ण-गर्व और नीच माने गये वर्णोंको दबाकर रखनेकी वृत्ति स्पष्ट रूपसे सामने आती है।

यह काण्ड बादमें लिखा गया है, इसका एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि दूसरे काण्डोंमें ऐसे प्रसंग नहीं हैं।

तपके अधिकारका सिद्धान्त—इस दलीलको निराधार तो नहीं कहा जा सकता। जितने गुरुगम्य ज्ञान हैं, उनमें जिज्ञासुके अधिकारकी जांच करनेकी प्रथा हमारे देशमें प्राचीन कालसे चली आई है। अधिकारकी जांच करनेमें दो दृष्टियां थीं। शिष्यकी चित्तशुद्धि और बुद्धि। गुरु इस बातकी जांच करनेमें बहुत सावधानी रखते थे कि शिष्य इतने शुद्ध अन्त:करणवाला है या नहीं कि स्वयं सम्पादित विद्याका वह कभी दुरुपयोग नहीं करेगा। इस दृष्टिसे यह आग्रह रखा जाता था कि अधिकारी शिष्यके न मिलने पर अपनी विद्याका अपने साथ ही नष्ट हो जाना अच्छा है, लेकिन अशुद्ध हृदयके मनुष्यको कभी ज्ञान देना ही नहीं चाहिये। विद्या संसारके कल्याणके लिए है, उच्छेद या संहारके लिए नहीं। यदि गुरुकी असावधानीके कारण विद्या कुशिष्यको प्राप्त हो जाये और उससे जनताका अहित हो, तो गुरुको उसका प्रायश्चित्त करना होता था। अधिकारकी जांच करनेमें दूसरी दृष्टि बुद्धिके विकासकी है। किन्तु इसके लिए गुरुको कम चिन्ता रहती थी। बुद्धिकी स्थूलता विशेष परिश्रमसे टल सकती है, अथवा जितनी बुद्धिकी पहुंच हो उतनी ही विद्या सिखाई जा सकती है। शुद्ध चित्तके साथ सूक्ष्म बुद्धिका संयोग तो गुरुकी दृष्टिमें सोनेमें सुगंध जैसा था।

अतएव तपकी विधि सूचित करते समय गुरु अधिकारकी जांच करे, तो यह उचित ही है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि कोई मनुष्य अपना गुरु बन ही नहीं सकता। अतएव यह प्रश्न खड़ा हो ही सकता है कि अगर कोई मनुष्य किसी दुष्ट हेतुकी सिद्धिके लिए स्वयं ही साधना करता हो, तो समाजको वैसी साधना करने देना चाहिये या नहीं?

इस कथामें मानो यह मान लिया गया है कि शम्बूकका हेतु दुष्ट था। [illegible]
[illegible]

गोकुल-पर्व

लगभग ५१०० वर्ष पहलेके भारतवासियोंने श्रीकृष्णका अद्भुत जीवन अपनी आंखोंसे देखा था। अनेक पवित्र ग्रन्थोंमें उनके चरित्रका वर्णन है, अनेक भक्त उन्हें अपनी प्रेमवृत्तिका अलौकिक पात्र बनाकर उनकी कीर्तिको चिरंजीव रख रहे हैं; किन्तु उनके इन गुणगानों पर चमत्कारिक रूपकोंकी ऐसी जबरदस्त तहें चढ़ चुकी हैं कि उस काव्यमय और गूढ़ भाषाके अन्दरसे सादा अर्थ निकालना बहुत ही कठिन हो जाता है। यही कारण है कि इसके लिए भिन्न-भिन्न लेखकोंको प्रायः अपनी कल्पना-शक्तिका ही उपयोग करना पड़ा है। श्रीकृष्णके विषयमें जो कुछ पढ़ने, सुनने या गानेमें आता है, उसकी कुछ बातें सच मानने लायक नहीं हैं और कुछ अगर सच ही हों, तो वे श्रीकृष्णको एक आदर्श पुरुषके रूपमें हलका चित्रित करती हैं। श्रीकृष्णको परमेश्वरका अवतार सिद्ध करनेकी इच्छावाले भक्ति-मार्गी कवियोंने उनके चरित्रमें इतनी अधिक नई बातें डाल दी हैं कि उनके कारण श्रीकृष्णका चरित्र एक घना जंगल ही बन गया है। जिज्ञासु पाठकोंको इसकी विस्तृत जानकारी श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य और श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके ग्रन्थोंसे मिल सकेगी। यहां मैंने उनकी चर्चा नहीं की है। किन्तु उक्त ग्रन्थोंके आधार पर श्रीकृष्णका चरित्र जितना वन्दनीय, निर्दोष और क्षम्य माना जा सकता है, उसीका वर्णन किया है। इनके सिवा श्रीकृष्णके

चरित्रकी अन्य बातें समालोचनाकी दृष्टिसे देखने पर सच नहीं मालूम होतीं; किन्तु यदि वे सच सिद्ध हों, तो मानना पड़ेगा कि उनके कारण आदर्श पुरुषके नाते श्रीकृष्णका मूल्य घट जाता है।

माता-पिता

२. कृष्णके पिता वसुदेव यदुवंशी क्षत्रिय थे। ऐसा मालूम होता है कि वे मथुराके पासके कुछ भू-भागके स्वामी थे। गायें यादवोंका मुख्य धन थीं। वसुदेवके पास भी बहुत अधिक गायें थीं। एक निश्चित कर लेकर ये गायें अहीरोंको सौंपी जाती थीं। इस कारण मथुराके आसपास अहीरोंके बहुतसे परिवार (व्रज) बस गये थे। वसुदेव एक शूर योद्धा और न्याय-प्रिय पुरुष थे। अपनी धर्मनिष्ठाके कारण सब यादवोंके बीच वे पूज्य माने जाते थे। उनके रोहिणी और देवकी नामक दो पत्नियां थीं। देवकी मथुराके राजा उग्रसेनकी भतीजी होती थी।

कंस

३. उग्रसेनके बड़े बेटेका नाम कंस था। वह राज्यका बड़ा लोभी था। पिताकी मृत्यु तक प्रतीक्षा करनेका धैर्य उसमें नहीं था। उसने मगध (दक्षिण बिहार)के राजा जरासन्धकी दो कन्याओंसे विवाह किया था। जरासन्ध उस जमानेका सबसे बलवान राजा था; इस कारण कंसको उसकी मददका भरोसा था। उधर जरासन्धको सार्वभौम बननेकी महत्त्वाकांक्षा थी; इसलिए कंसको राज्य दिलानेमें उसका अपना स्वार्थ भी था। आगे चलकर कंसने अपने पिताको कैद कर लिया और स्वयं राजा बन बैठा। यादवोंमें कंसका यह काम पसन्द नहीं [illegible]

था, इसलिए उसने उन्हें सताना शुरू किया । जो लोग उसे अपने विरोधमें जानेवाले मालूम हुए, उन पर वह अत्याचार करने लगा । ऐसा मालूम होता है कि उसने वसुदेव-देवकीको भी नजरबन्द करके रखा था । वसुदेवको अपनी स्त्री रोहिणीको अपने मित्र नन्द गोपके घर छिपा कर रखना पड़ा था ।

कंसका अत्याचार

४. अत्याचारी मनुष्य दूसरे बलवान पुरुषोंसे डरता है; पर उनसे भी अधिक डर तो उसे सत्यनिष्ठ पुरुषोंका लगता है । इसका कारण यह है कि उसे इस बातका विश्वास होता है कि दूसरे बलवानोंके साथ तो वह साम, दाम आदि उपायोंका प्रयोग करके उनका सामना कर सकता है, किन्तु सत्यनिष्ठ पुरुषको जीतनेके लिए तो स्वयं उसे ही सत्यनिष्ठ बनना होता है; लेकिन चूंकि स्वयं सत्यनिष्ठ बननेकी उसकी तैयारी नहीं होती, इसलिए वैसे व्यक्तिके सामने उसके हथियार ढीले पड़ जाते हैं । सत्यनिष्ठ पुरुषको मार डालनेकी हिम्मत वह एकाएक नहीं कर पाता; क्योंकि अत्याचारीके लिए भी प्रायः न्याय और धर्मका बाह्य वेश बतलाना आवश्यक हो जाता है । फिर निःस्वार्थी एवं सत्यनिष्ठ पुरुष पर किसी भी प्रकारका आरोप लगाना कठिन होता है । इसी न्यायके कारण वसुदेव-देवकीको नजरबन्द करनेके अलावा उनके साथ दूसरा कोई व्यवहार करनेकी हिम्मत कंस नहीं कर सका । दूसरे यादव अनेक प्रकारसे उसके शिकार हो गये । कुछ भाग खड़े हुए । कुछने अनुकूल समय आने तक अपनी नापसन्दगी छिपाये रखी और कुछने नये प्रदेशोंमें पराक्रम करके स्वतन्त्र राज्योंकी स्थापना कर ली ।

५. वसुदेव-देवकीको मार डालनेकी हिम्मत कंसमें नहीं थी। पर उसकी खूनकी प्यासी छुरी उनके बालकोंको मारनेमें हिचकिचाती नहीं थी। अत्याचारी अनेक प्रकारसे दुष्ट होते हैं। वे धर्माधर्मके विचारसे शून्य होते हैं। अकारण वैरी होते हैं। दुष्ट कर्म करनेमें वे एक क्षणके लिए भी हिचकिचाते नहीं। वे अन्धविश्वाससे भी मुक्त नहीं होते। संसारको अनीश्वर और केवल अपनी पापपूर्ण वासनाओंको तृप्त करनेका एक साधन मानते हुए भी उनके हृदयमें एक ऐसी निर्बलता पाई जाती है, जिसके कारण उनकी अपार श्रद्धा किसी सामान्य शकुन पर, अथवा छोटे-मोटे देवी-देवताके किसी वर पर, या किसी सामान्य विधिके ठीक-ठीक पालन पर जमी होती है। जो बड़ी-बड़ी सेनाओंसे नहीं डरते, चाहे किसीके साथ भी द्वंद्वयुद्ध करनेसे पीछे नहीं हटते, सिंह और सर्पके मुकाबलेसे नहीं डरते, वे एक छींकके अपशुकनसे, भूतके आभाससे, डरावने स्वप्नसे, ज्योतिषीकी भविष्य-वाणीसे, अथवा हृदयको सुनाई पड़नेवाली किसी अनपेक्षित आकाश-वाणीसे, अथवा भयसे इतने पस्तहिम्मत हो जाते हैं कि फिर किसी भी प्रकार वे उस विषयमें श्रद्धावान और निश्चिन्त नहीं बन पाते।

अत्याचारीके अंधविश्वास

६. कंसने भी ऐसी एक आकाश-वाणी[1] सुनी थी। उसके मनमें यह सन्देह पैदा हो गया था कि देवकीका आठवां गर्भ उसका नाश करनेवाला होगा; इसलिए, जैसा कि दूसरे सब डरपोक लोग करते हैं, इसी तरह कंसने भी देवकीके बालकों [illegible]

देवकी-पुत्रोंका नाश

१. [illegible]

पैदा होते ही मार डालना शुरू किया। आठवें गर्भकी गिनतीमें कदाचित् कहीं भूल हो जाये, आठवें बालकके मरने पर भी दूसरोंके जिन्दा रहनेसे हो सकता है कि वे अपने पिताको सताने और भाईको मार डालनेवालेसे बदला लें, अथवा वे यादवोंके नेता बनें, इस डरसे कंसने वसुदेवके एक भी बालकको जीवित न रखनेका निश्चय किया। इस प्रकार उसने देवकीके छह पुत्रोंको मार डाला।

बलराम

७. इस डरसे कि कहीं रोहिणीके गर्भका भी यही हाल न हो, गर्भ रहते ही वसुदेवने उसे नन्दके घर भेजनेकी व्यवस्था कर दी। वहां उसके दूधके समान [illegible] एक पुत्र जन्मा। उसका नाम राम रखा गया। बादमें अपने अतिशय बलके कारण वह बलराम अथवा बलदेवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवकीका सातवां गर्भ अधूरा गया। आगे चल कर देवकी [illegible] बार गर्भवती हुई। जिस तरह इस बालकको [illegible] लिए कंस विशेष रूपसे अधीर बना हुआ था, [illegible] वसुदेव-देवकीको भी यह तीव्र अभिलाषा थी कि वे [illegible] भी तरह बचा लें। संयोग कुछ ऐसा हुआ कि देवकी [illegible] महीनेमें ही प्रसव-वेदना शुरू हुई। वह [illegible] आधी रातका समय था। जोरकी वर्षा हो रही [illegible] यह सोचकर कि अभी प्रसूतिको कई दिन [illegible] नींदमें सोये पड़े थे। इस सुयोगमें [illegible] जन्मा। चतुर वसुदेवने तुरन्त ही [illegible] पहरेदारोंको नींदमें [illegible] लाभ उठाकर [illegible]

कृष्ण-जन्म

तरफ प्रयाण किया। [illegible]

५. वसुदेव-देवकीको मार डालनेकी हिम्मत कंसमें नहीं थी। पर उसकी खूनकी प्यासी छुरी उनके बालकोंको मारनेमें हिचकिचाती नहीं थी। अत्याचारी अनेक प्रकारसे दुष्ट होते हैं। वे धर्माधर्मके विचारसे शून्य होते हैं। अकारण वैरी होते हैं। दुष्ट कर्म करनेमें वे एक क्षणके लिए भी हिचकिचाते नहीं। वे अन्धविश्वाससे भी मुक्त नहीं होते। संसारको अनीश्वर और केवल अपनी पापपूर्ण वासनाओंको तृप्त करनेका एक साधन मानते हुए भी उनके हृदयमें एक ऐसी निर्बलता पाई जाती है, जिसके कारण उनकी अपार श्रद्धा किसी सामान्य शकुन पर, अथवा छोटे-मोटे देवी-देवताके किसी वर पर, या किसी सामान्य विधिके ठीक-ठीक पालन पर जमी होती है। जो बड़ी-बड़ी सेनाओंसे नहीं डरते, चाहे किसीके साथ भी द्वंद्वयुद्ध करनेसे पीछे नहीं हटते, सिंह और सर्पके मुकाबलेमें नहीं डरते, वे एक छींकके अपशकुनसे, भूतके आभाससे, डरावने स्वप्नसे, ज्योतिषीकी भविष्य-वाणीसे, अथवा हृदयको सुनाई पड़नेवाली किसी अनपेक्षित आकाश-वाणीसे, अथवा भयसे इतने पस्तहिम्मत हो जाते हैं कि फिर किसी भी प्रकारके विषयमें श्रद्धावान और निश्चिन्त नहीं बन पाते।

अत्याचारीके अंधविश्वास

६. कंसने भी ऐसी एक आकाश-वाणी[1] सुनी थी। मनमें यह सन्देह पैदा हो गया था कि देवकीका आठवां गर्भ उसका नाश करनेवाला होगा; [illegible]

[illegible]

[1] [illegible]

पैदा होते ही मार डालना शुरू किया। आठवें गर्भकी गिनतीमें कदाचित् कहीं भूल हो जाये, आठवें बालकके मरने पर भी दूसरोंके जिन्दा रहनेसे हो सकता है कि वे अपने पिताको सताने और भाईको मार डालनेवालेसे बदला लें, शायद वे यादवोंके नेता बनें, इस डरसे कंसने वसुदेवके एक भी बालकको जीवित न रखनेका निश्चय किया। इस प्रकार उसने देवकीके छह पुत्रोंको मार डाला।

७. इस डरसे कि कहीं रोहिणीके गर्भका भी यही हाल न हो, गर्भ रहते ही वसुदेवने उसे नन्दके घर भेजनेकी व्यवस्था कर दी। वहां उसके दूधके समान उज्ज्वल एक पुत्र जन्मा। उसका नाम राम रखा गया। बादमें अपने अतिशय बलके कारण वह बलराम अथवा बलदेवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवकीका सातवां गर्भ अधूरा गया। आगे चल कर देवकी आठवीं बार गर्भवती हुई। जिस तरह इस बालकको मार डालनेके लिए कंस विशेष रूपसे अधीर बना हुआ था, उसी तरह वसुदेव-देवकीकी भी यह तीव्र अभिलाषा थी कि वे उसे किसी भी तरह बचा लें। संयोग कुछ ऐसा हुआ कि देवकीको आठवें महीनेमें ही प्रसव-वेदना शुरू हुई। यह भादों वदी अष्टमीकी आधी रातका समय था। जोरकी वर्षा हो रही थी। पहरेदार यह सोचकर कि अभी प्रसूतिको कई दिनोंकी देर है, गहरी नींदमें सोये पड़े थे। इस सुयोगकी स्थितिमें देवकीके पुत्र जन्मा। चतुर वसुदेवने तुरन्त ही पुत्रको उठा लिया और पहरेदारोंकी नींदका तथा वर्षाके कोलाहलका लाभ उठाकर नदी पार करके नन्दके व्रजकी तरफ प्रयाण किया। ग्रन्थोंके अनुसार उसी

बलराम

कृष्ण-जन्म

समय नन्दकी स्त्री यशोदाने भी एक पुत्रीको जन्म दिया था। यशोदा मूर्च्छित अवस्थामें थी। वसुदेवने चुपचाप यशोदाकी शय्याके पास जाकर वालकको रख दिया और वालिकाको लेकर वे वापस देवकीके पास आ पहुंचे।[१] वालकोंकी अदला-वदलीकी यह वात वसुदेव-देवकीके सिवा और किसीको मालूम नहीं हुई। लड़कीने रोना शुरू किया। इतनेमें शायद रात भी लगभग पूरी हो रही होगी, इसलिए पहरेदार जाग उठे और उन्होंने कंसको प्रसूतिके समाचार सुनाये। देवकीने भाईसे गिड़गिड़ा कर कहा कि वह इस एक लड़कीको जीवित रहने दे, पर कठोर-हृदय कंस पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने वालिकाको एक शिला पर पछाड़कर मार डाला। अव तक उसने छह वालकोंकी हत्या की थी। यद्यपि उसने अपने हृदयको निष्ठुर वनाकर इस वालिकाको भी मार डाला था, फिर भी उसका पापी हृदय ही उसे यह कहने लगा कि यह तो क्रूरताकी हद हो गई है। इस निमित्तसे उसे जो पश्चात्ताप हुआ, उसके कारण वादमें उसने वसुदेव-देवकीको कारावाससे मुक्त कर दिया और वह उनका कुछ सम्मान भी करने लगा।

१. श्री वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय वालकोंकी ऐसी अदला-वदलीमें विश्वास नहीं रखते। इस कथाके आधार पर वे निम्नप्रकार [illegible] ही मानते हैं कि वसुदेवने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

८. सवेरा होते ही समूचे व्रजमें समाचार फैल गया कि यशोदाके पुत्र जन्मा है। बुढ़ापेमें गोपोंके मुखिया नन्दके घर पुत्रके जन्मकी खबर पाकर व्रजके हर घरमें आनन्द छा गया। ग्वालिनें हर्ष-विभोर होकर बधाइयां देने आईं और गीत गाने लगीं। यह पुत्र रामके समान गोरा नहीं, बल्कि सांवला था। इसके रंगके कारण इसका नाम कृष्ण रखा गया। यह भी रामकी तरह मनोहर गात्रोंवाला था। दुनियामें कोई बालक ऐसा नहीं जन्मा कि जो उसके माता-पिता और अड़ोस-पड़ोसके लोगोंको कुछ विशेष लक्षणोंवाला न लगा हो। इस पृथ्वी पर शायद ही कोई ऐसी माता पैदा हुई हो, जिसे अपना बालक विलक्षण न लगा हो और जिसे उसका ऊधम, बुद्धि, चतुराई, सद्गुण दूसरे सब बालकोंसे भिन्न न मालूम हुए हों। फिर जब बड़ा होने पर वह बालक यशस्वी होता है, तो बचपनके उसके छोटे-छोटे प्रसंग भी अद्भुत बन जाते हैं और उनकी स्मृतियां आनन्द देनेवाली बन जाती हैं। ऐसी दशामें इन बालकोंका विशिष्ट प्रतीत होना आश्चर्यजनक नहीं था। चूंकि इनका लालन-पालन गोपोंके बीच हो रहा था, इसलिए सब इन्हें गोप-कुमार ही मानते थे। ये स्वयं भी अपने क्षात्र-वंशसे परिचित नहीं थे। फिर भी आगको लकड़ीकी पेटीमें कैसे छिपाया जा सकता है? ठीक इसी तरह काले कम्बलोंमें इन भाइयोंका क्षात्र-तेज भी छिपा नहीं रह सका। बचपनसे ही इनके खेल-कूदमें इनकी बुद्धिमत्ता और साहसिकता प्रकट होने लगी थी। छाछकी मटकी फोड़नेमें, छींके परसे मक्खन

शिशु-अवस्था

चुरानेमें, बछड़ोंको खुला छोड़ देनेमें, पूंछ पकड़कर उन्हें इधरसे उधर घुमानेमें वे केवल अपनी रजोगुणी क्षात्र-वृत्तिका ही परिचय देते थे। अपने मान्य मुखियाके बालकोंके रूपमें, सौन्दर्यके भण्डारके रूपमें और अपने तूफानों तथा जोर-जबरदस्तियोंसे सबका ध्यान खींचनेवालोंके रूपमें राम-कृष्ण बाल-प्रेमी गोपियोंको इतने प्यारे लगने लगे थे कि वे उन पर सदा ही वारी जाती थीं। बराबरीकी उमरवाले बालकोंके बीच वे सहज ही 'बड़े ग्वाले' बन गये। जंगलमें रहनेवाले लोगों पर अनेक प्रकारके प्राकृतिक संकट आते रहते हैं। गांवमें भारी बवण्डरोंका आना, मदोन्मत्त सांड़ोंका बिगड़ उठना, अजगरों, श्वापदों आदिके उपद्रव होना मामूली बातें हैं। कृष्णको भी अपने बचपनमें इन संकटोंका सामना करना पड़ा। पर वे इन सबसे सही-सलामत बच गये। जब-जब उन पर प्रकृतिका कोप होता और वे उसमें से सुरक्षित बच जाते, तब-तब व्रजवासियोंको भारी आश्चर्य होता था। उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक था कि ये दुर्घटनायें किसी असुर द्वारा की-करायी जाती हैं। कवियोंने लिखा है कि व्रजवासियोंको ऐसा लगता था, मानो इन सब संकटोंसे बच जानेवाले राम-कृष्ण कोई देव अथवा परमेश्वर हैं। छोटे-बड़े सब कोई कृष्णको केवल उनकी मोहक मूर्ति तथा पराक्रमी, ऊधमी और विनोदी स्वभावके लिए ही चाहने लगे हों, सो बात नहीं। धीरे-धीरे उनका प्रेम कृष्णके प्रति आदर और भक्तिका रूप धारण करने लगा। उनमें कृष्णकी [illegible] भी [illegible] थी।

२. [illegible]

अगुवा बनते थे, उसी तरह कुमारावस्थामें

कौमार्य

छाछ बिलौनेमें, बछडोंको चरानेमें, खोये हुए पशुओंको खोज निकालनेमें, गोपकुमारोंकी रक्षा करनेमें, उन पर किसी भी प्रकारके भयका प्रसंग आने पर अपनेको संकटमें डालकर उन्हें बचा लेनेमें भी वे सदा ही सबसे आगे रहते थे।

१०. जैसे-जैसे उमर बढती गई, वैसे-वैसे राम-कृष्ण दोनोंकी बुद्धि और बल भी बढता गया और वे दोनों बूढ़े गोपोंके लिए भी बहुत उपयोगी बनने लगे।

पौगण्डावस्था

अपने बढते हुए बलके साथ ही उन दोनोंकी, और विशेष कर कृष्णकी, परदुःख-भजनता भी बढ़ने लगी। उन्होंने अपनी ही शक्तिसे दो बार गोपोंको दावानलसे बचाया और अतिवृष्टिसे उनकी रक्षा की। कालिया नागका दमन करके यमुनाको निर्विष बनाया और जंगली गधोंका नाश करके वनको भयरहित किया। इसीके साथ उनका प्रेमल स्वभाव भी दिन-पर-दिन विकसित होता गया। उनकी मधुर मुरलीसे निकलनेवाला स्नेह-रस गायोंको भी ठिठका देता था। उनके रासोंमें अद्भुत

कृष्ण-भक्ति

आनन्द-रस प्रकट होता था। कृष्णकी पवित्र प्रेमलताके कारण गोप-गोपियोंके चित्त उनके प्रति कुछ ऐसे आकर्षित हुए कि सांसारिक जीवनमें उन्हें कोई रस नहीं रह गया। अवनतिके कालमें जब हमारे देशमें भावनाओंका शुद्ध विकास रुक गया और उनकी पवित्रताको समझनेको हमारी शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि कहीं भी स्त्री-पुरुषके

बीच परिचय देखकर हमें उसमें अपवित्रताकी ही गन्ध आने लगी, उस कालमें कृष्णकी इस अत्यन्त स्वाभाविक प्रेम-भक्तिकी कथाने हमारे देशमें विकृत स्वरूप धारण करना शुरू किया और भक्तोंने उसीको जनताके सामने आदर्शके रूपमें रखनेका साहस किया। जिन दिनों कृष्णके निर्दोष चरित्रको जारके रूपमें चित्रित किया गया, उन दिनों हमारे देशकी सामाजिक स्थिति कैसी रही होगी, इसका विचार करने योग्य है। इसके सहारे यशोदानन्दनके चारित्र्यका अनुमान करना एक साहस ही माना जायगा।

कृष्णका सर्वांगीण विकास

११. कृष्णमें केवल भावनाका उत्कर्ष ही नहीं था, केवल बुद्धि-कौशल और शारीरिक बल ही नहीं था, बल्कि उनकी सदसद्-विवेक-बुद्धि भी जाग्रत थी। जबसे वह समझने लगे, तभीसे उनके सामने धर्म और अधर्मका विचार बना रहने लगा। बचपनमें ही उनके मनमें शंका उत्पन्न हुई कि इन्द्रकी पूजा क्यों की जानी चाहिये? गोपोंके जीवनका आधार तो गायें और गोवर्धन है। मेघ गोपोंके लिए ही नहीं बरसता। न गोपोंके बलिदानसे मेघोंका बरसना [illegible] मालूम होता है। बल्कि गायोंकी पवित्रताको समझनेमें और जिनके सहारे उनका निर्वाह होता है, उनकी पूजनीयताको जाननेमें ही उनकी समृद्धि समाई हुई है। कुछ इसी प्रकारके विचारोंसे प्रेरित होकर कृष्णने इन्द्रकी पूजा बन्द करवाई और गायोंकी तथा गोवर्धनकी पूजा करवाई।

१२. इस प्रकार बाल-कालके १०–१४ वर्ष गोकुलमें बीते। [illegible] और [illegible] [illegible], [illegible]

यौवन-प्रवेश

प्रवीण इन भाइयोंकी जोड़ी सफेद और काले हाथीके समान शोभा देती थी। उनके बल-पराक्रमकी कथाएं चारों ओर प्रसिद्ध हो गईं। कंसने भी उनके बारेमें बातें सुनीं। उसे पता चला कि वसुदेवने सगर्भा रोहिणीको नन्दके घर भेज दिया था।

कंसका संदेह

उसके मनमें शंका जागी कि कहीं कृष्ण भी वसुदेवका ही पुत्र तो नहीं है? एक बार भरी सभामें अपनी यह शंका व्यक्त करते हुए उसने वसुदेवसे तुच्छतापूर्ण बातें कही थीं। जब वसुदेवने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उसे पक्का विश्वास हो गया। लेकिन इस बार उसने बाहरी तौर पर अपना व्यवहार बदला। उसके दिलमें अपने भानजोंको देखनेका प्रेम उमड़ आया। वह मल्लयुद्धमें उनकी निपुणता देखनेके लिए उत्सुक हो उठा। उसने एक बड़ा-सा अखाड़ा तैयार करनेकी आज्ञा दी। उसके पास मुष्टिक और चाणूर नामके दो बलवान मल्ल थे। उसने अपने इन मल्लोंसे युद्ध करनेके लिए राम-कृष्णको आमन्त्रित करनेका निश्चय किया।

केशी-वध

१३. कंसने एक ओर मल्लयुद्धके लिए अखाड़ा तैयार करवाया, और दूसरी ओर उसने एक ऐसी युक्ति रची कि जिससे राम और कृष्णके मथुरा पहुंचनेसे पहले ही उनका कांटा निकल जाये। कृष्णको जानसे मार डालनेके लिए उसने अपने भाई केशीको गोकुल भेजा। कृष्ण गाय चरा रहे थे। उसी समय एक जबरदस्त घोड़े पर सवार होकर केशी कृष्णकी ओर

बीच परिचय देखकर हमें उसमें अपवित्रताकी ही गन्ध आने लगी, उस कालमें कृष्णकी इस अत्यन्त स्वाभाविक प्रेम-भक्तिकी कथाने हमारे देशमें विकृत स्वरूप धारण करना शुरू किया और भक्तोंने उसीको जनताके सामने आदर्शके रूपमें रखनेका साहस किया। जिन दिनों कृष्णके निर्दोष चरित्रको जारके रूपमें चित्रित किया गया, उन दिनों हमारे देशकी सामाजिक स्थिति कैसी रही होगी, इसका विचार करने योग्य है। इसके सहारे यशोदानन्दनके चारित्र्यका अनुमान करना एक साहस ही माना जायगा।

कृष्णका सर्वांगीण विकास

११. कृष्णमें केवल भावनाका उत्कर्ष ही नहीं था, केवल बुद्धि-कौशल और शारीरिक बल ही नहीं था, बल्कि उनकी सदसद्-विवेक-बुद्धि भी जाग्रत थी। जबसे वह समझने लगे, तभीसे उनके सामने धर्म और अधर्मका विचार बना रहने लगा। बचपनमें ही उनके मनमें शंका उत्पन्न हुई कि इन्द्रकी पूजा क्यों की जानी चाहिये? गोपोंके जीवनका आधार तो गायें और गोवर्धन है। मेघ गोपोंके लिए ही नहीं बरसता। न गोपोंके बलिदानसे मेघोंका बरसना बन्द-चक्र चलता है। बल्कि गायोंकी पवित्रताको समझनेमें और जिसके सहारे उनका निर्वाह ठीकसे होता है, उसकी पूजनीयताको जाननेमें ही उनकी समृद्धि समाई हुई है। कुछ इसी प्रकारके विचारोंसे प्रेरित होकर कृष्णने इन्द्रकी पूजा बन्द करवाई और गायोंकी तथा गोवर्धनकी पूजा चलाई।

१२. इस प्रकार बाल-कृष्णकी १७–१८ वर्ष की उमर बीती। उनके हँस-खेल और मुग्ध व्यापारोंके, बचपनकी

यौवन-प्रवेश

प्रवीण इन भाइयोंकी जोड़ी सफेद और काले हाथीके समान शोभा देती थी। उनके बल-पराक्रमकी कथाएं चारों ओर प्रसिद्ध हो गईं। कंसने भी उनके बारेमें बातें सुनीं। उसे पता चला कि वसुदेवने सगर्भा रोहिणीको नन्दके घर भेज दिया था।

कंसका संदेह

उसके मनमें शंका जागी कि कहीं कृष्ण भी वसुदेवका ही पुत्र तो नहीं है? एक बार भरी सभामें अपनी यह शंका व्यक्त करते हुए उसने वसुदेवसे तुच्छतापूर्ण बातें कही थीं। जब वसुदेवने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उसे पक्का विश्वास हो गया। लेकिन इस बार उसने बाहरी तौर पर अपना व्यवहार बदला। उसके दिलमें अपने भानजोंको देखनेका प्रेम उमड़ आया। वह मल्लयुद्धमें उनकी निपुणता देखनेके लिए उत्सुक हो उठा। उसने एक बड़ा-सा अखाड़ा तैयार करनेकी आज्ञा दी। उसके पास मुष्टिक और चाणूर नामके दो बलवान मल्ल थे। उसने अपने इन मल्लोंसे युद्ध करनेके लिए राम-कृष्णको आमन्त्रित करनेका निश्चय किया।

१३. कंसने एक ओर मल्लयुद्धके लिए अखाड़ा तैयार करवाया, और दूसरी ओर उसने एक ऐसी युक्ति रची कि

केशी-वध

जिससे राम और कृष्णके मथुरा पहुंचनेसे पहले ही उनका कांटा निकल जाये। कृष्णको जानसे मार डालनेके लिए उसने अपने भाई केशीको गोकुल भेजा। कृष्ण गाय चरा रहे थे। उसी समय एक जबरदस्त घोड़े पर सवार होकर केशी कृष्णकी ओर

बीच परिचय देखकर हमें उसमें अपवित्रताकी ही गन्ध आने लगी, उस कालमें कृष्णकी इस अत्यन्त स्वाभाविक प्रेम-भक्तिकी कथाने हमारे देशमें विकृत स्वरूप धारण करना शुरू किया और भक्तोंने उसीको जनताके सामने आदर्शके रूपमें रखनेका साहस किया। जिन दिनों कृष्णके निर्दोष चरित्रको जारके रूपमें चित्रित किया गया, उन दिनों हमारे देशकी सामाजिक स्थिति कैसी रही होगी, इसका विचार करने योग्य है। इसके सहारे यशोदानन्दनके चारित्र्यका अनुमान करना एक साहस ही माना जायगा।

कृष्णका सर्वांगीण विकास

११. कृष्णमें केवल भावनाका उत्कर्ष ही नहीं था, केवल बुद्धि-कौशल और शारीरिक बल ही नहीं था, बल्कि उनकी सदसद्-विवेक-बुद्धि भी जाग्रत थी। जबसे वह समझने लगे, तभीसे उनके सामने धर्म और अधर्मका विचार बना रहने लगा। बचपनमें ही उनके मनमें शंका उत्पन्न हुई कि इन्द्रकी पूजा क्यों की जानी चाहिये? गोपोंके जीवनका आधार तो गायें और गोवर्धन है। मेघ गोपोंके लिए ही नहीं बरसता। न गोपोंके बलिदानसे मेघोंका बरसना घट-बढ़ सकता है। बल्कि गायोंकी पवित्रताको समझनेमें और जिनके सहारे उनका निर्वाह ठीकसे होता है, उनकी पूजनीयताको जाननेमें ही उनकी सद्बुद्धि समाई हुई है। कुछ ऐसी प्रसंगके सिलसिलेमें प्रेरित होकर कृष्णने इन्द्रकी पूजा बन्द करवाई और गायोंकी तथा गोवर्धनकी पूजा करवाई।

१२. इस प्रकार बाल-कृष्णके १३-१४ वर्ष गोकुलमें बीते। इसी [illegible] और मुष्टिक [illegible], [illegible]

१६. अक्रूरका रथ नन्दके आंगनमें आ पहुंचा। गोपोंने राजदूतका यथोचित सत्कार किया। अक्रूरने नन्द-यशोदाको कृष्ण-जन्मकी सही जानकारी स्पष्ट रूपसे दी। जब नन्द और यशोदाको पता चला कि कृष्ण उनका पुत्र नहीं है, तो वे दोनों स्तब्ध हो गये। गोपोंको भी ऐसा लगा मानो आसमान ही टूट पड़ा हो। इनसे पहले व्रज पर कई संकट आये थे, पर अक्रूरका आना तो सबको ऐसा लगा, मानो वह व्रजको जिन्दा गाड़नेके लिए ही हुआ हो।

१७. अक्रूरने एकान्तमें बैठकर राम-कृष्णसे लम्बी चर्चा की। कंसके अत्याचारोंकी कथा कही। वसुदेव-देवकी पर किये गये अत्याचारोंकी जानकारी दी। यह भी बताया कि राम-कृष्णको मल्लयुद्धके लिए न्योतनेमें कंसका आन्तरिक हेतु क्या है। और, उन्हें यह विश्वास भी दिलाया कि यदि राम-कृष्ण कंसका अन्त करेंगे, तो सारा यादव-समाज उन्हींके पक्षमें रहेगा।

१८. राम और कृष्णने सारी बातें सुन लीं। उन्हें स्पष्ट प्रतीत हुआ कि पृथ्वी परसे कंसका भार उतारना उनके लिए धर्म-रूप है। उन्होंने अक्रूरके साथ जानेका निश्चय किया।

१९. राम और कृष्णको विदा करनेकी घड़ी आ पहुंची। विदाईका मतलब था, लगभग सदाका वियोग। उस समयका दृश्य शुष्क हृदयको भी रुलानेवाला था। नन्द-यशोदाके लिए तो बिना मौतके अपने एकमात्र पुत्रको खोनेका प्रसंग आ खड़ा हुआ

विदाई

झपटा। दूसरे गोपोंने कृष्णको खतरेसे सावधान किया। घोड़ा वेधड़क कृष्ण पर आ धंसा, किन्तु कृष्ण जरा भी न घबराये। वह जहांके तहां स्थिरभावसे खड़े रहे। घोड़ेने जैसे ही कृष्णको काटनेके लिए गरदन बढ़ाई, वैसे ही कृष्णने उसकी कनपटी पर इतने जोरका घूंसा मारा कि घोड़ेके दांत उखड़ गये। इससे क्रोधमें घोड़ेने कृष्णको लात मारनेके लिए पिछली टांगें उठाईं। तुरन्त ही कृष्णने उन टांगोंको पकड़कर घोड़ेको इतनी जोरसे उछाला कि वह धड़ामसे जमीन पर आ गिरा। उसके साथ ही केशी भी जोरसे गिरा और गिरते ही यमलोक पहुंच गया। कुछ देर छटपटानेके बाद घोड़ा भी उसी मार्गका अनुयायी बना। इन समाचारोंको सुनकर कंसके तो होश ही गायब हो गये। वह भूख, प्यास और नींद खो बैठा। उसका दिल उसे डंक मारने लगा। चिन्ताके कारण वह बूढ़े-जैसा हो गया। जागते-सोते उसे भय ही भय दीखने लगा।

१४. फिर भी जब अखाड़ेका मण्डप तैयार हो गया, तो कंसने अक्रूर नामक एक यादवको रथके साथ राम और कृष्णको लिवा लाने भेजा। कंसने गोपोंको [illegible] भी निमन्त्रित किया। इसीके साथ उसने अपने मल्लोंको यह सूचना दी कि मल्लयुद्धमें वे राम-कृष्णको मार ही डालें।

१५. अक्रूर वसुदेवका चचेरा भाई था। बाहरसे वह कंसका राज-सेवक था, पर अन्दरसे उसका मन वसुदेवके साथ था; इसलिए दोनों भाइयोंको मथुरा लानेसे पहले वसुदेवसे [illegible] कि [illegible] [illegible] किया।

१६. अक्रूरका रथ नन्दके आंगनमें आ पहुंचा। गोपोंने राजदूतका यथोचित सत्कार किया। अक्रूरने नन्द-यशोदाको कृष्ण-जन्मकी सही जानकारी स्पष्ट रूपसे दी। जब नन्द और यशोदाको पता चला कि कृष्ण उनका पुत्र नहीं है, तो वे दोनों स्तब्ध हो गये। गोपोंको भी ऐसा लगा मानो आसमान ही टूट पड़ा हो। इससे पहले व्रज पर कई सकट आये थे, पर अक्रूरका आना तो सबको ऐसा लगा, मानो वह व्रजको जिन्दा गाड़नेके लिए ही हुआ हो।

१७. अक्रूरने एकान्तमें बैठकर राम-कृष्णसे लम्बी चर्चा की। कंसके अत्याचारोंकी कथा कही। वसुदेव-देवकी पर किये गये अत्याचारोंकी जानकारी दी। यह भी बताया कि राम-कृष्णको मल्लयुद्धके लिए न्योतनेमें कंसका आन्तरिक हेतु क्या है। और, उन्हें यह विश्वास भी दिलाया कि यदि राम-कृष्ण कंसका अन्त करेंगे, तो सारा यादव-समाज उन्हीके पक्षमें रहेगा।

१८. राम और कृष्णने सारी बाते सुन ली। उन्हें स्पष्ट प्रतीत हुआ कि पृथ्वी परसे कंसका भार उतारना उनके लिए धर्म-रूप है। उन्होंने अक्रूरके साथ जानेका निश्चय किया।

१९. राम और कृष्णको बिदा करनेकी घडी आ पहुंची। बिदाईका मतलब था, लगभग सदाका वियोग। उस समयका दृश्य शुष्क हृदयको भी रुलानेवाला था। नन्द-यशोदाके लिए तो बिना मौतके अपने एकमात्र पुत्रको खोनेका प्रसंग आ खड़ा हुआ

बिदाई

था। व्रजवासियोंके चित्तको कन्हैयाने इतना आकर्षित कर लिया था कि शरीरके रंगके कारण सार्थक बना हुआ नाम उनके प्रेमकी शक्तिके कारण भी योग्य सिद्ध हुआ। व्रजवासियोंके लिए तो मधुर मुरलीधर उनका सर्वस्व बन चुका था। कृष्णने उनके मन तो हर ही लिये थे, पर वे अपना तन-धन भी अपने पास रखना नहीं चाहते थे। पति-पुत्रादिके प्रति उनका जो सहज मोह था, वह भी कृष्णके दिव्य माधुर्यके सामने पराजित हो चुका था। कृष्णने व्रजवासियोंका जीवन ही बदल डाला था। पुराणकारोंने कृष्णका व्रज-चरित्र यह सिद्ध करनेकी दृष्टिसे चित्रित किया है कि वेदान्तका अध्ययन किये बिना, सूक्ष्म बुद्धिवाले सांख्य-विचारके बिना, योगाभ्यासके बिना और प्राणोंका निरोध किये बिना भी व्रजके गोप-गोपियोंके समान असंस्कारी और अनघड़ लोग भी केवल निर्दोष प्रेमके अतिशय उत्कर्षके कारण अपने चित्त शुद्ध करके भव-सागरसे तर सकते हैं। गोप-कथाके द्वारा उन्होंने भक्तियोग समझाया है।

कृष्ण और गोपियां

२०. गोपियोंके प्रति कृष्णका प्रेम कैसा रहा होगा? ५ वर्षका बालक अपनी माताके सिवा अन्य स्त्रियोंको किस भावसे देखता होगा? हम संसारी लोग यह जानते हैं कि सयाना आदमी पराई स्त्रीके प्रति मां-बहन या बेटीकी समझवाली भावना प्रयत्नपूर्वक धारण करके ही निर्दोष रह सकता है। इसका कारण यह है कि हम बचपनसे अपनी निर्दोषता खो बैठे हैं। क्या बालकको ऐसी भावना बतानी पड़ती है?

जिसके हृदयमें कुविचार जाग चुकता है, उसे फिरसे निर्दोषता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। पर बालकके लिए तो वह सहज है। किन्तु हम यह मानते है कि अमुक उम्रके बाद चित्तकी निर्दोष स्थितिकी कल्पना ही नही की जा सकती। हमारे युगके मलिन वातावरणका ही यह एक परिणाम है[१]। जब हम अपने चित्तको फिरसे शुद्ध करके उम्रमें बडे होने पर भी पांच वर्षकी उम्रका अनुभव पुनः कर सकेंगे, तभी हम कृष्णके प्रेमको समझने योग्य बनेंगे। उस दशामें कृष्णको कलंक लगानेकी, उस कलंकको दिव्य माननेकी और उस पर किसी भाष्यकी रचना करनेकी आवश्यकता नही रहेगी। जो सहज होना चाहिये उसकी प्रतीति होने पर हमें विश्वास हो सकेगा कि गोपी-जन-प्रिय कृष्ण सदा निष्कलंक और ब्रह्मचारी थे, युवक होते हुए भी बालकके समान थे और उनके प्रति गोपियोंका प्रेम भी उतना ही निर्दोष था।

मथुरा-पर्व

गज-वध

अन्तमें दिल कड़ा करके ब्रजवासियोंने राम-कृष्णको अक्रूरके साथ विदा किया। निश्चित समय पर दोनों भाई अखाड़ेकी ओर रवाना हुए। इस खेलको देखनेके लिए राजा-प्रजा सभी इकट्ठा हुए थे। कंसको इतना भी धीरज नही रहा था कि वह दोनों भाइयोंको मल्ल-युद्धमें मरते देखे। उसे खेल तो देखना ही न था। वह तो जिस किसी भी उपायसे राम-कृष्णके

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – २।

प्राण लेना चाहता था । इसलिए अखाड़ेके मण्डप-द्वारके सामने आते ही कंसकी आज्ञासे एक महावतने एक मदोन्मत्त हाथीको कृष्ण पर दौड़ा दिया । कृष्णने बिजलीकी-सी चपलता दिखाकर पहले हाथीको खूब थकाया और बादमें जोरसे उसका दांत उखाड़कर उसी दांतके प्रहारसे उसका सिर फोड़ दिया ।

मुष्टिक-चाणूर-मर्दन

२. इस पराक्रमसे जहां एक ओर कंसके होश गुम हो गये, वहां दूसरी ओर जनताकी सहानुभूति कृष्णके प्रति उमड़ पड़ी । कंसके कुचक्रके लिए जनता उसे धिक्कारने लगी । मल्ल-युद्ध आरम्भ करनेका समय आ पहुंचा । कंसने जैसे-तैसे हिम्मत रखी और राम-कृष्णसे कहा कि वे मुष्टिक और चाणूरके साथ मल्ल-युद्ध करके अपनी विद्याका प्रदर्शन करें । राम-कृष्ण तो अभी सत्रह-अठारह सालके बालक ही थे । उधर मुष्टिक और चाणूर तो अजेय मल्लके रूपमें पहलेसे ही प्रसिद्ध हो चुके थे । लोगोंको यह युद्ध अनुचित प्रतीत हुआ, किन्तु दोनों भाइयोंने बिना किसी आपत्तिके युद्धकी चुनौती स्वीकार की । मुष्टिकके साथ राम और चाणूरके साथ कृष्णकी भिड़न्त शुरू हुई । कंसके मल्ल कोई धर्म-युद्धके विचारसे नहीं आये थे । कुछ ही दावोंके बाद राम-कृष्णको अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके कपटका पता चल गया और उन्होंने भी दोनोंको इसी युद्धमें समाप्त कर डालनेका निश्चय कर लिया । कुश्ती लम्बी समय तक चली । आखिर [illegible] एक घूंसा [illegible] कृष्णने चाणूरको यम-लोकका मार्ग दिखाया । इस [illegible] सामना [illegible] कृष्णने [illegible] लिए

सामने आ खड़ा हुआ। कृष्ण उससे भी भिड़ गये। इतनेमें रामने भी मुष्टिकको मार डाला। यह देखकर कृष्णने तोशलको उठाकर इस तरह पछाड़ा कि गिरते ही वह मर गया।

३. यह दृश्य देखकर कंस तो चकित ही रह गया और एकदम पुकार उठा — "इन लड़कोंको यहांसे खदेड़ दो और नन्द-वसुदेवको दण्ड दो।" किन्तु कंसके इतना कहते-कहते तो कृष्ण उसके सिंहासनके पास पहुंच गये और उन्होंने उसे रंग-मंच पर ही पछाड़ा। तुरन्त ही कंसके प्राण-पखेरू उड़ गये। सभागृह शीघ्रतासे खाली होने लगा। किसी भी क्षत्रियने कंसका पक्ष नहीं लिया। केवल कंसका एक भाई श्रीकृष्णकी ओर झपटा। बलरामने उसका अन्त कर दिया। राम और कृष्ण देवकी और वसुदेवके पास पहुंचे तथा उनके चरणोंमें अपने मस्तक रख दिये। जन्मके बाद आज पहली ही बार माता-पिता अपने पुत्रोंसे मिल पाये। प्राणघातक युद्धसे वे सुरक्षित लौटे थे। उनके आनन्दका पार न रहा। आठों नेत्रोंसे लम्बे वियोगकी यादमें हर्षके आंसुओंकी धारायें बह चलीं। चारों छातियां प्रेमसे उमड़ने लगीं।

कंस-वध

४. सब यादवोंने सोचा था कि श्रीकृष्ण ही राजगादी संभालेंगे। किन्तु उन्होंने वैसा न करके कंसके पिता उग्रसेनको कारागृहसे मुक्त करके सिंहासन पर बैठाया और कंसकी उत्तर-क्रिया समुचित रीतिसे सम्पन्न की।

उग्रसेनका अभिषेक

गुरु-गृहमें

५. मथुराकी व्यवस्था हो जानेके बाद राम और कृष्णका उपनयन-संस्कार हुआ और वे उज्जयिनीमें सान्दीपनि नामक एक ऋषिके यहां विद्याभ्यासके लिए गये। थोड़े ही समयमें उन्होंने वेद-विद्या और धनुर्विद्याका अपना अभ्यास पूरा किया और अपनी गुरु-भक्तिसे ऋषिको बहुत ही प्रसन्न कर लिया। यद्यपि उस समय तक वे पूर्ण वैभवशाली बन चुके थे, फिर भी जंगलसे ईंधन, समिधा, दर्भ इत्यादि लाने, गायें दुहने और ढोर आदि चरानेकी सब प्रकारकी सेवा वे श्रद्धा-पूर्वक करते थे। गुरु-दक्षिणा चुकाकर दोनों भाई वापस मथुरा आये। मल्लके नाते फैली हुई उनकी ख्यातिमें धनुर्धरकी ख्याति और जुड़ गई।

जरासन्धका आक्रमण

६. पहले कहा जा चुका है कि कंसकी दोनों पत्नियां जरासन्धकी पुत्रियां थीं। पतिकी मृत्युके बाद वे अपने मायके गई और जरासन्धको अपने जमाईकी मृत्युका बदला लेनेके लिए उभाड़ने लगीं। उन दिनों जरासन्ध सारे भारतवर्षका सार्वभौम पद पा चुका था। दन्तवक्र, शिशुपाल, भीष्मक आदि अनेक राजा और राजकुमार उससे मित्रता बांधे हुए थे। उन सबकी मददसे जरासन्धने एक बड़ी सेना इकट्ठा की और मथुरा पर चढ़ाई कर दी। बलराम और कृष्णके सेनापतित्वमें यादवोंने किलेकी रक्षा शुरू की। लगातार २७ दिन तक युद्ध चलता रहा। २८वें दिन बलराम कुछ वीरोंके साथ बाहर निकले और मगधकी सेना पर टूट पड़े। उसी समय

दूसरे दरवाजेसे कृष्ण भी बाहर निकल आये। दोनों स्थानों पर भयंकर मार-काट मच गई। बलरामने जरासन्धके डिम्भक नामक एक बलवान मल्लको मार गिराया। आखिर जरासन्धको अपना घेरा उठाकर लौट जाना पड़ा।

७. सबको विश्वास था कि लौटा हुआ जरासन्ध वापस आयेगा ही, इसलिए यादवोंने गाफिल न रहकर मथुराकी रक्षाके लिए मुस्तैदीके साथ तैयारी शुरू कर दी।

जरासन्धका दूसरा आक्रमण

८. जैसा कि सोचा था, कुछ ही समयके बाद जरासन्ध फिर चढ़ आया। इस बार कई अनुभवी यादवोंको लगा कि भले जरासन्ध कई बार हार जाय, फिर भी उसके पास अखूट शक्ति है, जिसकी तुलनामें यादवोंकी शक्ति तो परिमित ही मानी जायगी। जरासन्धका सारा रोष राम और कृष्णके ऊपर था; इसलिए अच्छे-से-अच्छा उपाय तो यही हो सकता है कि राम और कृष्ण मथुरा छोड़कर चले जायं।

राम-कृष्णका मथुरा-त्याग

९. इस विचारसे प्रेरित होकर यादवोंने दोनों भाइयोंसे विनती की कि वे मथुरा छोड़ दें। प्रजाके हितका ध्यान करके राम-कृष्णने तुरन्त ही उनकी विनती स्वीकार कर ली और एक क्षणका भी विलम्ब न करके वे दक्षिणमें करवीर नगर जा पहुंचे। वहां उनका मिलन परशुरामसे हुआ। परशुरामने उन्हें आसपासके प्रदेशकी और वहांकी राजनीतिक स्थितिकी जानकारी दी। राम और कृष्ण उनकी सलाहसे गोमन्तक पर्वतके शिखर पर जा बसे।

१०. जब जरासन्धको पता चला कि राम और कृष्णने मथुरा छोड़ दी है, तो उसने उनका पीछा किया। उसे खबर मिली थी कि दोनों भाई गोमन्तक पर्वत पर छिपे हैं। उन्हें जिन्दा जला देनेके खयालसे अथवा लड़ाईके मैदानमें लड़नेके लिए विवश करनेके विचारसे उसने पहाड़में चारों तरफ आग लगवा दी। चारों ओर भयंकर अग्निको प्रज्वलित देखकर राम-कृष्णने अपने शस्त्रास्त्रोंके साथ पर्वत परसे कूदकर जरासन्धकी सेना पर हमला करना पसन्द किया। एक शिखरका आश्रय लेकर दोनोंने अपनी धनुर्विद्याके प्रभावसे जरासन्धकी सेनाका भारी संहार किया। बादमें बलरामने हल और मूसलसे और श्रीकृष्णने अपने चक्रसे अनेक वीरोंको मौतके घाट उतारा। आखिर जरासन्ध पराजित होकर लौट गया। श्रीकृष्ण और बलराम गोमन्तकसे रवाना होकर क्रौंचपुर पहुंचे। शिशुपालका पिता दमघोष क्रौंचपुरका राजा और कृष्णका फूफा था। उसने दोनों भाइयोंका स्वागत किया और उनके साथ कुछ सेना देकर उन्हें मथुरा रवाना किया।

गोमन्तक पर्वतका युद्ध

११. मार्गमें शृगाल नामके एक राजाने कृष्णको द्वन्द्व-युद्धके लिए ललकारा और उसमें वह हारा। मथुरा पहुंचते ही नगर-निवासियोंने बड़े गाजे-बाजेके साथ श्रीकृष्ण और बलरामका स्वागत किया। बादके दो-तीन वर्ष आनन्दमें बीते। उन्हीं दिनों अपनी फूफी कुन्तीके लड़कों (पाण्डवों) के साथ कृष्णकी पहचान हुई और कृष्ण उन्हें चाहने लगे। खासकर अर्जुन पर

मथुरा-निवास

समय कृष्णसे कोई १८ साल छोटा था अर्थात् उस समय केवल ५–६ वर्षका ही था; फिर भी वह कृष्णका विशेष प्रीति-पात्र बन गया। आगे चलकर यह प्रेम-सम्बन्ध दिन पर दिन बढ़ता ही गया और अन्तमें कृष्ण तथा अर्जुन दोनों परस्पर घनिष्ठ मित्र बन गये। इन्हीं दिनों बलराम एक बार गोकुल जाकर व्रजवासियोंसे मिल आये।

रुक्मिणी-स्वयंवर

१२. इसके बाद विदर्भके[1] राजा भीष्मकने अपनी पुत्री रुक्मिणीका स्वयंवर रचा। उसके लिए उसने अनेक राजाओंको निमन्त्रण भेजे थे, पर यादवोंको हलके कुलके क्षत्रिय मानकर टाल दिया था। इस कारण उस समयकी प्रथाके अनुसार श्रीकृष्ण रुक्मिणीका हरण करनेके लिए यादव सेनाके साथ कुण्डिनपुर पहुंचे। अतएव प्रेम और भयके कारण भीष्मकको कृष्णका स्वागत करनेके सिवा कोई चारा नहीं रहा; किन्तु इसके कारण जरासन्ध, शिशुपाल आदि राजा रूठ गये और कुण्डिनपुर छोड़कर अपने-अपने राज्यमें लौट गये। फलतः स्वयंवर जहांका तहां रह गया और कृष्ण भी मथुरा लौट आये।

मथुरा पर पुनः आक्रमण

१३. किन्तु चूंकि कृष्णके कारण ही जरासन्ध, शिशुपाल आदि मुकुटधारी राजाओंको स्वयंवरसे वापस लौट जाना पड़ा था, इसलिए उन्होंने इसमें अपनी बेइज्जती समझी। इसका बदला लेनेके लिए उन्होंने एक बार फिर मथुरा पर चढ़ाई करनेका निश्चय किया। उन्होंने पश्चिमकी ओरसे कालयवनको

---

१. वर्तमान बरार ही पुराने विदर्भका अंग माना जाता है। कहा जाता है कि अमरावतीसे कुछ ही कोस दूर कुण्डिनपुर था।

भी बुलवा लिया और दोनों ओरसे यादवोंके राज्य पर चढ़ाई करने और मथुराको घेरनेकी तैयारी की। यादवोंमें एक साथ दो शत्रुओंसे लड़नेकी हिम्मत नहीं थी। वे घबरा गये। इसलिए सारी स्थितिका विचार करके श्रीकृष्णने मथुराको और यादवोंको सदाके लिए इस त्राससे मुक्त करनेकी दृष्टिसे यह निश्चय किया कि यादवोंको मथुरा छोड़कर आनर्त देशमें (सौराष्ट्रमें) एक नया नगर बसाना चाहिये।

१४. कृष्णका यह निश्चय सबको पसन्द पड़ा। तुरन्त ही सब यादव मथुरा छोड़कर निकल पड़े। द्वारिकाके पास पहुंचकर सबने पड़ाव डाला। बादमें वहां एक परकोटा बांधनेकी व्यवस्था करके श्रीकृष्ण कालयवनसे बदला लेनेके लिए मथुराकी ओर लौटे। धौलपुरके पास कालयवनसे कृष्णकी भेंट हुई। श्रीकृष्णने कालयवनकी सेनाको धौलपुरके पहाड़ोंमें ले जाकर एक तंग जगहमें फंसा दिया। इसके कारण गुस्सा होकर कालयवन अकेला ही कृष्णके पीछे पड़ गया। पर वह मुचकुन्द नामक एक राजाका शिकार बन गया।

१५. कालयवनकी मृत्युसे उसकी सेना अव्यवस्थित हो गई और कृष्णने उसे सरलतासे हरा दिया। उसे रथ आदि अपनी सब सम्पत्ति छोड़कर भागना पड़ा। कृष्ण उस सम्पत्तिके साथ द्वारिका आये। चूंकि यादवोंने मथुरा छोड़ दी थी, इसलिए जरासन्धको भी अपनी चढ़ाई रोक देनी पड़ी और वापस अपने देश जाना पड़ा।

द्वारिका-पर्व

द्वारिकामें कृष्णने एक सुन्दर नगर बसाया। यादवोंके राजाके रूपमें अपने पिता वसुदेवका अभिषेक किया। बलदेवको युवराज बनाया। दस विद्वान यादवोंका एक मंत्रि-मण्डल नियुक्त किया और दूसरे वीर यादवोंको मुख्यमंत्री, सेनापति आदि पदों पर बैठाया। अपने गुरु सान्दीपनिको उज्जयिनीसे बुलाकर उन्हें राज-पुरोहितके रूपमें नियुक्त किया। केवल अपने लिए ही उन्होंने कोई पद नहीं लिया। लेकिन किसीसे यह बात छिपी नहीं थी कि मुकुटधारीका मुकुट, पदाधिकारियोंके पद और मन्त्रियोंकी मन्त्रणा सब कुछ उन्हींके कारण था।

द्वारिका बसाई

२. इसी बीच रुक्मिणीके भाई रुक्मीके आग्रहसे भीष्मकने रुक्मिणीका विवाह शिशुपालसे करनेका निश्चय किया; किन्तु रुक्मिणीने अपने मनमें कृष्णसे विवाह करनेका निश्चय कर रखा था, इसलिए उसने कृष्णको संदेशा भेजा कि वे उसका हरण करके उसे ले जायें। कृष्ण तुरन्त ही कुण्डिनपुरके लिए रवाना हुए। पता चलते ही बलराम भी भाईकी मददके लिए सेना लेकर उनके पीछे दौड़े। विवाहसे पहले कुलाचारके अनुसार रुक्मिणी कुलदेवीके दर्शनके लिए मन्दिरमें गई। संकेतके अनुसार कृष्णने वहींसे उसे रथमें बैठा लिया और तुरन्त ही रथ हवासे बातें करने लगा। शिशुपाल और उसके सहायक राजाओंने कृष्णका पीछा किया; किन्तु इतनेमें बलराम आ पहुंचे। उन्होंने

रुक्मिणी-हरण

राजाओंको रोका और हरा दिया। अकेले रुक्मीने कृष्णका पीछा किया। उसने कृष्णको नर्मदा किनारे पकड़ लिया और युद्धके लिए ललकारा। एक ओर भाई और दूसरी ओर पतिको देखकर दोनोंके लिए प्रीति रखनेवाली रुक्मिणी घबरा गई। उसने कृष्णसे विनती की कि वे उसकी और उसके भाईकी भी रक्षा करें। दोनोंके बीच युद्ध छिड़ गया। रुक्मी घायल हो गया। कृष्णने उसे उसीके रथमें बांध दिया और अपना रथ द्वारिकाकी दिशामें दौड़ाया। शर्मका मारा रुक्मी कुण्डिनपुर लौटा ही नहीं, बल्कि वहीं (वर्तमान डभोईके पास) राज्यकी स्थापना करके रहने लगा। इन घटनाओंके कारण रुक्मी, शिशुपाल, जरासन्ध और उनके मित्र दन्तवक्र, शाल्व और पौण्ड्रक-वासुदेव सभी कृष्णके कट्टर शत्रु बन गये। रुक्मिणीके अतिरिक्त कृष्णकी और भी स्त्रियां थीं अथवा नहीं, और थीं तो कितनी थीं, इसके बारेमें विद्वानोंमें मतभेद है। श्री बंकिमचन्द्रने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि श्रीकृष्णकी एक ही पत्नी थी। उनका परिवार बड़ा था।

नरकासुर-वध

३. उन दिनों आसाममें नरकासुर नामक एक राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त दुष्ट और उन्मत्त था। अनेक देशोंकी सुन्दर-सुन्दर लड़कियोंका अपहरण करके उसने उन्हें कैदमें डाल रखा था। श्रीकृष्णने उन गरीब लड़कियोंको छुड़ानेका विचार करके नरकासुर पर चढ़ाई कर दी और लड़ाईमें उसे मार डाला, लड़कियोंको बन्धन-मुक्त किया और नरकासुरके पुत्र भगदत्तको गादी पर बैठाकर श्रीकृष्ण द्वारिका लौट आये।

४. कृष्णकी अनुपस्थितिमें शिशुपालने द्वारिका पर चढाई कर दी। वह नगरको जीत तो नहीं सका, पर उसे जलाकर बहुत नुकसान पहुंचाया। कृष्णने आकर द्वारिकाको फिरसे बसाया और उसकी पुरानी शोभामें अधिक वृद्धि की।

शिशुपालका आक्रमण

पाण्डव-पर्व

उन्हीं दिनों पाण्डवों पर भारी संकट आ पडा था। दुर्योधनने उन्हें उन्हींके महलमें जिन्दा जला देनेका षड्यन्त्र रचा था; किन्तु भीमकी चतुराईसे वे बच गये थे। तभीसे वे ब्राह्मणके वेशमें देश-देशान्तरकी यात्रा करते हुए अपने दिन बिता रहे थे। विदुरको छोड़कर सारी दुनिया उन्हें मरा जानती थी। कौरवोंने उनकी श्राद्ध आदि क्रियायें करके सार्वजनिक रीतिसे शोक भी मनाया था; किन्तु नीचेकी घटनाने उन्हें फिर प्रकट कर दिया।

पाण्डव

२. पांचाल देशके राजा द्रुपदके द्रौपदी नामक एक पुत्री थी। एक घूमते हुए चक्र पर टिके लक्ष्यको उसका प्रतिबिम्ब देखकर जो कोई अपने बाणसे बेधेगा, उसीके साथ द्रौपदीका विवाह होगा, इस प्रकारकी प्रतिज्ञाके साथ द्रुपदने एक स्वयंवरकी रचना की थी। अपने पुत्र प्रद्युम्नके लिए उक्त कन्याको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे कृष्ण भी काम्पिल्य नगर पहुंचे थे। पाण्डव

द्रौपदी-स्वयंवर

भी साधुके वेशमें वहां आये थे और ब्राह्मणोंके बीच बैठे थे। कोई भी क्षत्रिय द्रुपद राजा द्वारा घोषित प्रणको पूरा न कर सका। श्रीकृष्ण और सात्यकि[1] समर्थ थे, पर वे उठे नहीं। दुर्योधनका मित्र कर्ण उठा, किन्तु उसके सूत-पुत्र[2] होनेके कारण द्रौपदीने उसे धनुषको हाथ लगाने नहीं दिया; इस कारण ब्राह्मणोंको अवसर मिला कि वे अपना कौशल दिखायें। अर्जुन तुरन्त उठा और देखते ही देखते उसने प्रण पूरा कर दिया। द्रौपदीने उसे वरमाला पहनाई और पाण्डव उसे लेकर कुन्तीके पास पहुंचे। कुन्तीने उसे आशीर्वाद दिया और पांचों पाण्डवोंकी पत्नी बननेकी आज्ञा की। कृष्णने अर्जुनको तुरन्त ही पहचान लिया और वे उसके पीछे-पीछे घर पहुंचे। उस दिनसे उन्होंने द्रौपदीको अपनी बहन माना और उनकी मददसे पाण्डवोंके साथ द्रौपदीका विवाह धूम-धामसे हुआ।

इन्द्रप्रस्थ

३. यह जानकर कि पाण्डव जीवित हैं, कौरवोंको गहरा धक्का लगा, लेकिन ऊपरी तौर पर उन्होंने अपना आनन्द प्रकट किया और युधिष्ठिरको आधा राज्य सौंप दिया। पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ नामक एक नगर बनाया और वे राज्य करने लगे।

---

१. एक यादव वीर; द्रोणाचार्यका शिष्य।

२. भाट, चारण जैसी एक जाति। असलमें कर्ण कुन्तीपुत्र था, किन्तु कुन्तीने उसे बचपनमें छोड़ दिया था और [illegible] [illegible] नामक एक चारण स्त्रीने उसका लालन-पालन किया था।

उनकी नीति और पराक्रमके कारण थोड़े ही समयमें उनका राज्य समृद्ध वन गया । इससे दुर्योधनकी ईर्ष्या बढ़ने लगी । दूसरी तरफ बलरामकी बहन सुभद्रा[1]के साथ अर्जुनका विवाह हो जानेसे पाण्डवोंके साथ कृष्णका सम्बन्ध अधिक गाढ हो गया ।

४. इस प्रकार कई साल बीत गये । इसी बीच एक दिन कुछ राजाओंकी ओरसे एक दूत श्रीकृष्णके पास आया । उसने बताया कि कृष्णके मध्यदेशसे चले जानेके कारण वहां जरासन्धका बल बहुत ही बढ गया है और उसने सैंकड़ो राजाओंको जीत कर उन्हे बन्दी बना लिया है । अब उसका

---

१. अर्जुनने क्षत्रियोंकी रीतिके अनुसार सुभद्राका हरण करके उससे विवाह किया था, किन्तु इसमें बलरामका विरोध था और कृष्णकी सहमति, इसी कारण बलरामको अर्जुनका यह कार्य सह लेना पडा; किन्तु बलरामने सुभद्रा उनकी सगी बहन थी, तो भी अर्जुनके साथ विशेष मित्रता नही बढाई। अपने शिष्य दुर्योधनके प्रति ही उनका विशेष पक्षपात रहा। दूसरी तरफ कृष्णके पुत्र साम्बने दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण करके उससे विवाह किया था। इस प्रकार कृष्ण और दुर्योधन एक-दूसरेके समधी होते थे, फिर भी उनके बीच मीठा सम्बन्ध न था।

यह एक विचारणीय बात है कि स्त्रीके निमित्तसे महाभारतमें कितनी शत्रुता प्रकट हुई लगती है। कृष्ण और शिशुपाल तथा उसके मित्र राजाओंके बीचकी शत्रुता रुक्मिणीके कारण खडी हुई; कृष्ण और शतधन्वाके बीचकी शत्रुताका कारण सत्यभामा बनी, पाण्डवोंके प्रति बलरामके वैमनस्यका कारण सुभद्रा-हरण माना जा सकता है, कृष्णके साथ दुर्योधनकी अनबन लक्ष्मणाके हरणके कारण पैदा हुई और द्रौपदी तो महाभारत-युद्धका बड़े-से-बडा कारण मानी जायगी।

विचार इन सब राजाओंका बलिदान करके पुरुष-मेध[१] करनेका है; इसलिए वे सब कृष्णकी शरण चाहते हैं। कृष्ण दूतके इस संदेश पर विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें युधिष्ठिरकी ओरसे एक दूत आ पहुंचा और उसने उन्हें तुरन्त ही इन्द्रप्रस्थ पहुंचनेकी विनती की। कृष्ण तुरन्त ही इन्द्रप्रस्थ पहुंचे। युधिष्ठिरको उनके भाइयों और मित्रोंने राजसूय-यज्ञ[२] करनेकी सलाह दी थी। युधिष्ठिरने इस सम्बन्धमें श्रीकृष्णकी राय जाननेके लिए ही उन्हें बुलवा भेजा था।

जरासन्ध-वध

५. यह सोचकर कि बिना दिग्विजयके राजसूय-यज्ञ निर्विघ्न पूरा न हो सकेगा, श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको जताया कि जब तक जरासन्ध सार्वभौम पद पर प्रतिष्ठित है, तब तक यज्ञकी आशा नहीं रखी जा सकती; अतएव पहले जरासन्धको जीतना जरूरी है। बादमें कृष्णकी ही सलाहसे भीम, अर्जुन और कृष्ण तीनों जरासन्धकी राजधानीके लिए रवाना हुए और वहां पहुंचकर जरासन्धको संदेशा भेजा कि वह तीनमें से किसीके साथ मल्लयुद्ध करे। जरासन्धने प्रतिपक्षीके रूपमें भीमको पसन्द किया। उस समय उसकी उमर अस्सी सालकी थी और भीमकी पचास सालकी थी। फिर भी दोनोंके बीच चौदह दिन तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें जरासन्ध हारा और मरा। कृष्णने उसके पुत्रका अभिषेक किया और कैदमें

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी — ३।
२. देखिये, अन्तमें टिप्पणी — ४।

पड़े हुए राजाओंको छोड़ दिया। ये सब राजा पाण्डवोंके अनुकूल हो गये।

६. जरासन्धकी मृत्युके समाचार सुनकर उसके मित्र पौण्ड्रक-वासुदेवने कृष्णको द्वन्द्वयुद्धका निमन्त्रण भेजा। कृष्णने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और युद्धमें उसे हराकर उसके प्राण हर लिये।

७. जरासन्धकी बाधा हट जानेसे अब पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञके लिए कोई कठिनाई न रह गई। युधिष्ठिरने सब राजाओंको निमन्त्रण भेजे। सभी राजा भेंट-उपहार लेकर इन्द्रप्रस्थ आये। पाण्डवोंके मित्रके नाते कृष्णने पूजाके समय ब्राह्मणोंके चरण धोनेका काम अपने जिम्मे लिया। अन्तमें यज्ञ समाप्त हुआ। अवभृथस्नान[1]से पहले मेहमानोंकी पूजा करनेका काम शुरू हुआ। युधिष्ठिरने भीष्मसे पूछा कि पहली पूजा किसकी की जाय? भीष्मने कृष्णको अग्रपूजाके योग्य माना। पाण्डवोंको तो यह निर्णय बहुत ही अच्छा लगा। तदनुसार सहदेवने तुरन्त ही कृष्णकी पूजा की। किन्तु शिशुपालसे यह सहा नहीं गया। उसने पाण्डवोंकी और कृष्णकी खूब निन्दा की और भीष्मके निर्णयके प्रति अपना तिरस्कार प्रकट किया। इसके उत्तरमें भीष्मने कहा, "जो क्षत्रिय दूसरेको जीतकर फिर उसे छोड़ देता है, वह उसका गुरु है। ज्ञानकी अतिशयताके कारण ब्राह्मण सबमें पूज्य माना जाता है, वयोवृद्ध होनेके कारण शूद्र पूज्य बनता

राजसूय-यज्ञ

शिशुपाल-वध

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी—५।

प्रामाणिक माने जानेवाले लोगों द्वारा भी बिना किसी संकोचके खेला जाता है, उसी तरह द्वापरके वक्तके क्षत्रिय राजा भी पासोंका जुआ खेलते हुए लज्जित नहीं होते थे; इतना ही नहीं, बल्कि जिस तरह काठियावाड़के राजा 'कसुम्बे'[1] का इनकार करने पर अपना अपमान करते थे, उसी तरह जुएके लिए प्राप्त निमन्त्रणको अस्वीकार करना अपमानसूचक माना जाता था। युधिष्ठिर धर्मपर अवश्य थे, पर वे धर्म-सुधारक नहीं थे। वे जानते थे कि द्यूत-क्रीड़ा निन्दनीय है, फिर भी जो प्रथा चल पड़ी थी और जो मान्यता रूढ़ हो चुकी थी, उसे सुधारनेका बल उनमें नहीं था। दुर्योधन आदि युधिष्ठिरके स्वभावसे परिचित थे। उन्होंने एक महल बनवाया था। उसे देखनेके बहाने पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलाया गया। कुछ दिनों तक उन्हें बड़े आदरके साथ रखा गया। फिर एक दिन फुरसतके समय चल रही गपशपसे लाभ उठाकर शकुनिने युधिष्ठिरसे पासे खेलनेको कहा। जब युधिष्ठिरने आनाकानी की तो शकुनिने ताना[2] मारते हुए कहा — "अगर चतुरों द्वारा पागलोंको बहकानेमें और सबलों द्वारा दुर्बलोंको लूटनेमें पाप नहीं है, तो द्यूतमें कुशल मनुष्य द्वारा अकुशलको जीतनेमें कौनसा पाप है? आपने दिग्विजयमें दुर्बल राजाओंको जीतकर क्या कोई न्याय किया है? वैसे मेरा कोई आग्रह नहीं है।" युधिष्ठिरको तानेवाली बात चुभ गई और पासा सब छोड़कर वे बरबस शकुनिके शिकार बन

---

१. अफीमका घोल, ...आदिके अवसरों पर काठियावाड़की कुछ जातियोंमें ...या जाता है। — अनुवादक

२. देखिये,

है। कृष्ण सबमें वयोवृद्ध नहीं हैं, किन्तु वे ज्ञानवृद्ध, बल और धनवृद्ध हैं, इसलिए वे ही अग्रपूजाके योग्य हैं।" उत्तरके कारण शिशुपालका रोष अधिक उग्र हो उठा और ज्यों ही उसने श्रीकृष्णको मारनेके लिए शस्त्र-प्रहार करना चाहा, त्यों ही कृष्णका चक्र उसकी गर्दन पर घूम गया।

द्यूत-पर्व

राजसूय-यज्ञ पूरा तो हुआ, पर वह देशमें कलहके बीज बोता गया। जरासन्ध, पौण्ड्रक-वासुदेव और शिशुपालके वधके

कलहके बीज

कारण दन्तवक्र और शाल्वकी कृष्णके साथ शत्रुता हो गई। शाल्वने सौभ नामक एक विमान तैयार करवाया और द्वारिका पर आक्रमण कर दिया। वह उस विमानमें से नगर पर पत्थर, बाण, अग्नि आदिकी वर्षा कर भारी नुकसान करने लगा। अन्तमें कृष्णने युद्धमें उसका भी वध किया। इसी तरह दन्तवक्रको भी द्वन्द्वयुद्धमें मार डाला।

२. कलहका दूसरा बीज दुर्योधनके दिलमें जमा। पाण्डवोंकी समृद्धि और राजसूय-यज्ञमें युधिष्ठिरको जो सम्मान

जुआ

मिला, उसे देखकर वह मारे ईर्ष्याके जलने लगा। उसने अपने मामा शकुनि और कर्णके साथ सलाह करके पाण्डवोंकी सम्पत्तिका हरण करनेके लिए एक षड्यन्त्र रचा। उस जमानेके क्षत्रियोंमें जुएके व्यसनने गहरी जड़ जमा ली थी। जिस तरह घुड़दौड़का जुआ आज राज-मान्य होनेके कारण अच्छे-अच्छे और

प्रामाणिक माने जानेवाले लोगों द्वारा भी बिना किसी शर्मके खेला जाता है, उसी तरह कृष्णके जमानेके धार्मिक राजा भी पासोंका जुआ खेलते हुए लज्जित नहीं होते थे; इतना ही नहीं, बल्कि जिस तरह काठियावाड़के राजा 'कसुम्बे'[1] का इनकार करने पर अपमानका अनुभव करते थे, उसी तरह जुएके लिए प्राप्त निमन्त्रणको अस्वीकार करना अपमानसूचक माना जाता था। युधिष्ठिर धर्मराज अवश्य थे, पर वे धर्म-सुधारक नहीं थे। वे जानते थे कि द्यूत-क्रीडा निन्दनीय है, फिर भी जो प्रथा चल पड़ी थी और जो मान्यता रूढ हो चुकी थी, उसे सुधारनेका बल उनमें नहीं था। दुर्योधन आदि युधिष्ठिरके स्वभावसे परिचित थे। उन्होंने एक महल बनवाया था। उसे देखनेके बहाने पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलाया गया। कुछ दिनों तक उन्हें बड़े आदरके साथ रखा गया। फिर एक दिन फुरसतके समय चल रही गपशपसे लाभ उठाकर शकुनिने युधिष्ठिरसे पासे खेलनेको कहा। जब युधिष्ठिरने आनाकानी की तो शकुनिने ताना[2] मारते हुए कहा —"अगर चतुरों द्वारा पागलोंको बहकानेमें और सबलों द्वारा दुर्बलोंको लूटनेमें पाप नहीं है, तो द्यूतमें कुशल मनुष्य द्वारा अकुशलको जीतनेमें कौनसा पाप है? आपने दिग्विजयमें दुर्बल राजाओंको जीतकर क्या कोई न्याय किया है? वैसे मेरा कोई आग्रह नहीं है।" युधिष्ठिरको तानेवाली बात चुभ गई और पापका भय छोड़कर वे बरबस शकुनिके शिकार बन

१. अफीमका घोल, जो ब्याह-शादी आदिके अवसरों पर काठियावाड़की कुछ जातियोंमें पीया और पिलाया जाता है। — अनुवादक

२. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – ६।

गये। उन्होंने जुआ खेलना कबूल कर लिया। शकुनि पासे फेंकनेमें होशियार था और कपटपूर्वक मनचाहे पासे डाल सकता था। उसने दुर्योधनकी तरफसे पासे डालना शुरू किया। खेलमें एकके बाद एक रुपया-पैसा, रथ-सम्पत्ति, अश्व-गज-सम्पत्ति आदि दाव पर लगाये जाने लगे। लेकिन युधिष्ठिर हर दाव हारते रहे। अन्तमें धर्मराज एकके बाद एक अपने भाइयोंको भी दाव पर लगाने लगे[१]। भाइयोंको दास बना चुकनेके बाद उन्होंने अपने आपको भी दाव पर लगा दिया और हार गये। शकुनिको इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा—"धर्म, अभी एक दाव और बाकी है। यदि उसे जीत जाओगे तो सब कुछ लौटा दूंगा। अपनी स्त्रीको दाव पर लगाओ।" इस निर्लज्ज प्रस्तावको सुनकर सभा 'धिक्-धिक्' पुकार उठी। किन्तु राजाके अविवेककी नींद अभी तक खुली नहीं थी। उन्होंने सती द्रौपदीको दाव पर लगा दिया। शकुनिने पासे फेंके और वह 'जीते, जीते' चिल्ला उठा।

द्रौपदी-वस्त्रहरण

२. इसके बाद दुर्योधनका भाई दुःशासन रजस्वला द्रौपदीको निर्लज्जतापूर्वक सभामें खींच लाया और उसके वस्त्र उतारने लगा। महासती द्रौपदीने भयभीत होकर भीष्म, द्रोण और अपने पतियोंकी ओर देखा, परन्तु इनमें से किसीने भी उसकी रक्षाके लिए आँख तक नहीं उठाई। आखिर उसने अनन्य भावसे परमात्माकी शरण ली और मर्यादापूर्ण किन्तु तीखी

१. देखिये, आगे टिप्पणी—२।

और वीरतापूर्ण दलीलोंसे धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण आदिको आड़े हाथों लेना शुरू किया। सब सभासदों पर इसका प्रभाव पड़ा। सभी दुःशासनको धिक्कारने लगे और द्रौपदीकी प्रशंसा करने लगे। अन्धे धृतराष्ट्रने इस एक साथ उठे धिक्कार और धन्यवादका कारण पूछा। विदुरने उन्हें सारी हकीकत समझाई। धृतराष्ट्र सब कुछ सुनकर द्रौपदी पर प्रसन्न हुए और उससे वर मांगनेको कहा। द्रौपदीने अपने पतियोंका छुटकारा चाहा। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको दासत्वसे मुक्त कर दिया और द्रौपदीसे कहा कि वह एक वर और मांगे। द्रौपदीने अपने पतिका राज्य लौटा देनेको कहा। धृतराष्ट्रने वैसा ही किया।

४. युधिष्ठिर अपने भाइयों और पत्नीके साथ इन्द्रप्रस्थके लिए रवाना हुए, किन्तु धृतराष्ट्रके वरदानसे दुर्योधन आदिकी सारी चण्डाल चौकड़ीको ऐसा लगा, मानो उनकी मेहनत पर पानी फिर गया हो! उन्होंने धृतराष्ट्रसे प्रार्थना की कि वे एक बार फिर युधिष्ठिरको पासे खेलनेके लिए बुलायें। चर्म-चक्षु और प्रज्ञा-चक्षु दोनोंसे रहित वृद्धने पुत्रमोहके वश होकर वैसी आज्ञा भी जारी करा दी। शर्त यह रखी गई कि इस बार जो हारेगा, वह बारह वर्ष तक वनवासमें और एक वर्ष तक अज्ञात-वासमें रहेगा; और अज्ञात-वासके दिनोंमें पकड़ा गया, तो फिर वैसा ही दण्ड भुगतेगा। शकुनिने पासा फेंका और फिर वही जीता। सब कुछ खतम! दो घड़ीके खेलमें धर्मराजने जुएके जरिये सारे जीवनकी आसमानी-

फिर जुआ

सुलतानी कर दिखाई। इन्द्रप्रस्थ जानेको निकले हुए भाई और पत्नी वल्कल पहनकर वनकी ओर चल दिये। वृद्धा कुन्ती विदुरके घर रहीं और पाण्डवोंकी दूसरी पत्नियोंको अपने-अपने पीहर जाना पड़ा।

५. शाल्वके साथकी लड़ाई निपटनेके वाद द्वारिका लौटते हुए कृष्णको पाण्डवों पर आये संकटका पता चला।

कृष्णका मिलन

वसुदेव, बलराम आदि यादवोंको साथ लेकर कृष्ण अरण्यमें पाण्डवोंसे मिले और उन्हें सान्त्वना दी। द्रौपदी[1]ने वहुत विलख-विलख कर कृष्णको अपना सारा हाल कहा। उसके अपमानकी हकीकत सुनकर कृष्णने रोमांचित होकर प्रतिज्ञा की: "तुम जिन पर उचित ही कारणसे क्रुद्ध हुई हो, उनकी स्त्रियां भी इसी तरह फूट-फूटकर रोयेंगी और तुम सब राजाओंके बीच सम्राज्ञी बनकर रहोगी।"

६. जिन दिनों पाण्डव बारह वर्षका वनवास और एक वर्षका अज्ञात-वास बिता रहे थे, उन दिनों कृष्ण तत्त्वज्ञानके

कृष्णका तत्त्व चिन्तन और योगाभ्यास

चिन्तनमें और योगाभ्यासमें लगे रहे। उन्होंने घोर आङ्गिरससे आत्मज्ञानका उपदेश लिया। भिन्न-भिन्न मतों और तत्वोंका सम्पूर्ण मनन किया। बचपनमें उन्होंने मल्ल-श्रेष्ठकी और युवावस्थामें धनुर्धर-श्रेष्ठकी कीर्ति प्राप्त की थी। अब वे योगी-श्रेष्ठ भी बन गये। वनवासके आरम्भमें उनकी उमर लगभग ७० सालकी थी। अब वे ८३ सालके हो चुके थे।

---

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – ८।

युद्ध-पर्व

वनवास समाप्त हुआ। पाण्डवोंने अज्ञात-वासके बाद प्रकट होकर फिर अपना हिस्सा मांगा। इस बात पर मतभेद खड़ा हो गया कि अज्ञात-वासका वर्ष चन्द्रकी गतिसे माना जाय या सूर्यकी गतिसे। भीष्मने अपना निर्णय पाण्डवोंके पक्षमें दिया, किन्तु दुर्योधनने उसे स्वीकार नही किया। अब पाण्डवोंके सामने लड़ाईके अतिरिक्त और कोई उपाय नही रहा। मदद मांगनेके लिए अर्जुन द्वारिका दौड़ा गया। दुर्योधनने सुना, तो वह भी द्वारिका पहुचा। कृष्णने उत्तर दिया—"मैं अब लड नही सकता। आवश्यकता होने पर युक्तिकी कुछ बातें कह सकूंगा। एक मुझे ले ले, दूसरा मेरी सेना ले ले।" अर्जुनने कृष्णको पसन्द किया और दुर्योधनने सेना ली। बलराम तटस्थ रहे और यात्रा पर निकल पड़े। यादवोंमें से कुछ पाण्डवोंसे और कुछ कौरवोंसे जा मिले। यद्यपि यह झगड़ा एक प्रान्तकी बराबरीवाले राज्यके लिए था, फिर भी पारस्परिक सम्बन्धोंके कारण वह समूचे हिन्दुस्तानमें फैल गया। ठेठ दक्षिणको छोड़कर शेष सारे भारतवर्षके क्षत्रिय इस गंवार लड़ाईके लिए तैयार होकर कुरुक्षेत्रमें इकट्ठा हुए। दुर्योधनके पक्षमें ग्यारह अक्षौहिणी[1] और पाण्डवोंके पक्षमें सात अक्षौहिणी

पाण्डव प्रकट हुए

१. २१,८७० गजसवार, इतने ही रथी, रथियोंसे तिगुने घुड़सवार और पाच गुनी पैदल सेनाकी एक अक्षौहिणी मानी जाती है। अर्थात् एक अक्षौहिणीमें २,१८,७०० तो लड़नेवाले ही होते हैं; सारथी, महावत आदि इनसे अलग। यों कुल मिलाकर एक अक्षौहिणीमें लगभग ३ लाखका दल-बल होता है।

सेना इकट्ठा हुई। अर्थात् इन चचेरे भाइयोंकी लड़ाईमें एक-दूसरेके प्राण लेनेके लिए लगभग ५४ लाख लोग इकट्ठा हुए।

कृष्णकी संधि-वार्ता

२. युद्ध शुरू करनेसे पहले युधिष्ठिरने समझौतेके द्वारा झगड़ा मिटानेका बहुत प्रयत्न किया। आखिर केवल ५ गांव लेकर सन्तुष्ट हो जानेकी अपनी तैयारी दिखाकर उन्होंने कृष्णको संधि-वार्ताके लिए हस्तिनापुर भेजा। कृष्ण और विदुर[1]ने धृतराष्ट्र और दुर्योधनको बहुत समझाया। भीष्मने भी कृष्णका समर्थन किया, पर दुर्योधनने गर्वपूर्वक उत्तर दिया कि एक सूईके खड़ी रहने जितनी जमीन भी पाण्डवोंको नहीं मिलेगी। यह सोचकर कि सब अनर्थोंकी जड़ दुर्योधन है, कृष्णने धृतराष्ट्रको सलाह दी कि वह दुर्योधनको कैद कर ले। लेकिन मोहवश पितासे यह काम नहीं हो सका। उल्टे, दुर्योधनने कृष्णको कैद करनेका प्रयत्न किया। किन्तु कृष्ण चतुराईसे बच निकले।

३. संधि-वार्ताके निमित्तसे की गई इस भेंटके अवसर पर दुर्योधनने शिष्टाचारके रूपमें कृष्णको राजमहलमें ठहरनेके लिए आमन्त्रित किया था; किन्तु कृष्ण दुर्योधनके मानशून्य आतिथ्यके लोभी नहीं थे। उन्होंने कहा — "मनुष्य दो कारणोंसे दूसरेके घर भोजन करता है; एक, जब और कहीं भोजन न मिले; दूसरे, प्रेमवश। मेरे सामने भोजनका कोई संकट नहीं है और तुम्हारे आमन्त्रणमें प्रेम नहीं है। ऐसी दशामें मैं तुम्हारे घर भोजन कैसे करूं?" यह कहकर उन्होंने विदुरके गरीबखानेमें

१. धृतराष्ट्रके सौतेले भाई, किन्तु दासीपुत्र।

रहना पसन्द किया और उसके साथ बैठकर सादी दाल-रोटी खानेमें आनन्द माना।

४. उस समयके भारतवर्षके तीन महापुरुषोंमें विदुर एक माने जा सकते हैं। उनका जीवन बहुत ही सादा था। न्यायप्रियता और बुद्धिमत्तामें उनकी बराबरी करनेवाला शायद ही कोई था। भीष्म न्यायप्रिय और ज्ञानी थे, किन्तु वे अपनेको अर्थका दास मानते थे और न केवल कौरवोंके अन्यायको रोकनेमें अपने-आपको असमर्थ समझते थे, बल्कि उन्हें छोड़नेकी ताकत भी उनमें नहीं थी। सब कोई उन्हें दादा मानते थे। राज-काजमें अथवा युद्धमें उनकी मददके बिना दुर्योधनका कोई काम बनता न था। फिर भी दुर्योधन उनसे अपना मनचाहा काम करा सकता था। तात्पर्य यह कि दुर्योधनके अन्यायोंमें उनकी सहायता निमित्त रूप मानी जा सकती है। राज्यकी खटपटमें विदुरका कोई हाथ नहीं था। उनकी साधुता और ज्ञानके कारण ही उनसे दो बातें पूछी जाती थीं; किन्तु उन्हें जिम्मेदारीका कोई भी काम सौंपा नहीं गया था। दासी-पुत्र होनेके कारण क्षत्रियके रूपमें भी उनका कोई सम्मान नहीं था। वे योद्धा भी नहीं थे, पर उनमें निडर होकर सब बात कहनेकी बड़ी हिम्मत थी। दुर्योधन जो अन्याय कर रहा था और पुत्र-मोहके कारण धृतराष्ट्र जिसका समर्थन करते रहते थे, उसके बारेमें धृतराष्ट्रको समझाकर और फटकार कर विदुरने अनेक प्रकारसे उन्हें सावधान किया था। महाभारतके विदुरनीतिवाले भागमें उस

विदुर, भीष्म और कृष्ण

सिखावनका समावेश हुआ है, जो विदुरने धृतराष्ट्रको दी थी। उसमें इस बातका विवेचन है कि व्यवहारकी दृष्टिसे धर्मनीति कैसी होती है और किस प्रकार उसकी रक्षा की जा सकती है। जब उन्होंने देखा कि कौरव अपना हठ छोड़ते नहीं हैं, तो उन्होंने कौरवोंको त्याग दिया और हस्तिनापुर छोड़कर तीर्थ-यात्राके लिए निकल पड़े। कृष्णने स्वयं शस्त्र न चलानेका निश्चय किया, पर वे पाण्डवोंके पक्षमें रहे। इस प्रकार इन तीन ज्ञानी और महात्मा पुरुषोंने पारिवारिक कलहमें तीन अलग-अलग प्रकारसे अपना योग दिया। एकने अन्यायी किन्तु वर्तमान मुकुटधारी राजाको टिकाये रखनेमें संसारका कल्याण समझा, दूसरेने उसका त्याग करके मौन धारण करना उचित समझा और तीसरेने उस राजाका नाश करनेमें ही पुरुषार्थ माना। सत्यासत्यका ठीक विचार करनेकी शक्ति रखनेवालोंमें भी ऐसी तीन प्रकारकी दृष्टि हरएक युगमें पाई जाती है। इससे यह पता चलता है कि अमुक समयमें शुद्ध धर्म क्या है, इसका निश्चय करना कितना कठिन है। इससे हमें यही सीखनेको मिलता है कि जो बात हमें सत्य प्रतीत होती है, उस पर अमल करते हुए भी हमसे भिन्न मार्ग पर चलनेवालोंकी प्रामाणिकताके बारेमें दोषारोपण करना उचित नहीं।

५. दोनों तरफसे लड़ाईकी तैयारियां शुरू हुई। कुरुक्षेत्रमें दोनोंकी सेनाएं आ डटीं। कृष्णने अर्जुनके सारथीका काम संभाल लिया। महाभारतके कवियोंने इस घटनाको [illegible] दृष्टिसे [illegible] पर [illegible] कर धर्मनीतिकी अत्यन्त विचार करनेके लिए

अर्जुनका विषाद

एक साधन बनाया है। प्रसंग यह खड़ा किया है कि मानो ऐन लड़ाई छिड़नेके समय ही दोनों तरफकी समूची सेनाओंको देखनेके लिए अर्जुनका रथ आगे आ कर खड़ा हुआ। शंख बजाये गये। अर्जुन दोनों तरफकी ताकतका अन्दाज लेने लगा। उस समय अर्जुनने देखा कि इस युद्धमें केवल सगे-सम्बन्धी ही आपसमें लड़नेको इकट्ठा हुए हैं। फलतः ऐसे भयंकर युद्धके बुरे परिणाम उसकी आंखोंके सामने आ खड़े हुए। उसने इसमें जनताके नाशका, क्षात्रवृत्तिके लोपका और आर्योंकी अधोगतिका स्पष्ट दर्शन किया। इससे उसे बहुत शोक हुआ। वह लड़ाईसे हटनेको तैयार हो गया। कृष्ण यह समझ गये कि उसका यह शोक अशुभ समय पर और अपनी क्षात्र-प्रकृतिमें विद्यमान बलवान संस्कारोंको पूरी तरह न पहचाननेके कारण पैदा हुआ है; इसके मूलमें सद्-असद् विवेककी शक्ति नहीं है, बल्कि वह क्षणिक मोहके कारण उत्पन्न हुआ है। इसलिए कृष्णने उसे ज्ञानका उपदेश दिया। जिस भागमें यह चर्चा हुई है, वही भगवद्गीता है। इस उपदेशसे अर्जुनका मोह दूर हुआ और वह युद्धके लिए तैयार हो गया।

गीतोपदेश

६. थोड़ेमें गीताका रहस्य समझाना सरल नहीं है। इसका कोई निश्चय नहीं[1] कि लेखके द्वारा यह रहस्य जाना ही जा सकता है। जिन पाठकोंके लिए यह जीवन-चरित लिखा गया है, वे इसके सारे रहस्यको समझ सकेंगे, इसकी कोई आशा साधारणतया की नहीं जा सकती। उन्हें तो यही कहा जा

१. फिर भी इसी लेखकका लिखा 'गीता-मन्थन' नामक ग्रन्थ पढ़ने योग्य है। — प्रकाशक

सकता है कि सत्पुरुषोंके मुंहसे इस शास्त्रको बार-बार सुनना चाहिये और श्रद्धापूर्वक बार-बार इसका मनन और अध्ययन करना चाहिये। इन्द्रियोंको और मनको संयममें रखकर भक्ति करनी चाहिये और सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य इत्यादि गुण बढ़ाने चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि स्वयं अपनी योग्यतानुसार वे अपने-आप गीताको समझने लगेंगे और जैसे-जैसे उनकी योग्यता बढ़ेगी, वैसे-वैसे उन्हें गीतामें नये रहस्यके दर्शन होंगे। जब तक गीताका रहस्य समझमें न आये, तब तक हम सत्कर्मोंमें अनुराग रखें। अपने देश, काल, वय, परिस्थिति, जाति, शिक्षा, कुल आदिके संस्कारोंके कारण जो कर्तव्य-कर्म हमें करने पड़ें, उन्हें धर्म-बुद्धिसे करें और इस इच्छासे करते रहें कि उनके द्वारा हमें परम-पद तक पहुंचनेकी योग्यता प्राप्त होगी। यह मार्ग निर्भयताका मार्ग है। इस तरहका व्यवहार करनेवालेकी उन्नति होकर ही रहती है।

युद्ध-वर्णन

७. कहा जाता है कि विक्रम संवत्से तीन हजार छियालीस वर्ष पहलेके वर्षके मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्ल एकादशीसे १८ दिन तक घमासान युद्ध हुआ। उस युद्धकी सारी बातें यहां नहीं कही जा सकतीं। यहां तो हम कृष्ण-सम्बन्धी दो-चार प्रसंगोंका ही वर्णन करेंगे। दस दिन तक भीष्म कौरवोंके और भीम पाण्डवोंके सेनापति रहे। यद्यपि पाण्डव कौरवोंका भारी संहार करते थे, फिर भी भीष्मके जीते-जी कौरवोंको जीतना कठिन था। तीसरे दिन भीष्मने पाण्डवोंका बहुत नुकसान किया। अर्जुनको बचानेके लिए कृष्णने [illegible] [illegible] अपनी [illegible]

गुमलता खर्च कर डाली, फिर भी अर्जुन मूर्च्छित हो गया। यह देखकर कृष्णको बहुत बुरा लगा। उन्होंने सोचा कि भीष्म स्वयं पवित्र और पूजनीय होते हुए भी कौरवोंका पक्ष लेकर अधर्मको आश्रय दे रहे हैं। यदि एक भीष्म मर जायं, तो लड़ाई जल्दी खतम हो जाय। यह सोचकर युद्धमें न लड़नेकी अपनी प्रतिज्ञाके रहते भी कृष्ण सुदर्शन-चक्र लेकर भीष्मके रथकी तरफ दौड़े। कृष्णको चक्रके साथ अपनी ओर आते देखकर भीष्मने एक महान आश्चर्यकारक काम किया। उन्होंने अपने धनुष-बाण रथमें डाल दिये और दोनों हाथ जोड़कर बोले—"हे देवदेवेश, जगन्निवास श्रीकृष्ण! तुम्हारे हाथों मौत आये तो बहुत ही अच्छा हो। उससे यह लोक और परलोक दोनों सुधर जायेंगे। आओ और मुझे खुशीसे मारो।" प्रेमकी इस ढालके सामने बेचारे सुदर्शन-चक्रकी धार भी भोथरी हो गई। अपनी प्रतिज्ञा भूलकर मारनेको तत्पर हुए कृष्ण शान्त हो गये। उन्होंने भीष्मको समझाया कि वे अन्यायका पक्ष लेकर अनर्थके कारण न बनें। भीष्मने कहा—"राजा परम दैवत है। हमसे उसका निवारण नहीं हो सकता।" कृष्ण बोले—"यादवोंने कंसको खतम किया, क्योंकि समझाने पर भी वह समझा नहीं। आपको तो इसका पता है न?" इस प्रकार अधर्मी राजाको हटाया जा सकता है या नहीं, इसके बारेमें तात्त्विक वाद-विवाद चल ही रहा था कि इतनेमें अर्जुन फिर होशमें आ गया और कृष्णको अपनी प्रतिज्ञा न तोड़नेके लिए समझाकर वापस रथमें ले गया। इसके बाद फिर युद्ध विधिवत् शुरू हो गया।

८. दसवें दिन अर्जुन और भीष्मके बीच फिर युद्ध शुरू हुआ। उस दिन अर्जुनके बाणोंकी वृष्टिसे भीष्म बिंध गये। इस प्रकार उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी और ज्ञानी महात्माकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

भीष्मका अंत

९. भीष्मके बाद द्रोणाचार्य कौरवोंके सेनापति बनाये गये। इसके बाद तीसरे दिन अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु अतिशय वीरता दिखाकर रणमें खेत रहा। उस रात अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले दुर्योधनके बहनोई जयद्रथका वध न हुआ, तो वह स्वयं चितामें जल मरेगा। दूसरे दिन जयद्रथकी रक्षाके लिए कौरवोंने व्यूह-रचना की, किन्तु अन्तमें अपनी ही असावधानीसे ठीक सूर्यास्तके समय वह मारा गया। अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। इससे गुस्सा होकर कौरवोंने रात्रि-युद्ध शुरू किया। कर्णने पाण्डवों पर जोरोंका हमला बोल दिया। भीमका पुत्र घटोत्कच रात्रि-युद्धमें कुशल था। उसने कृष्णकी सलाहसे राक्षसी माया रची। कौरवों पर पत्थर आदिकी वर्षा करके भारी संहार किया। अतएव कर्णने उस पर अपनी अमोघ शक्ति चलाकर उसे समाप्त कर दिया। कर्णको यह वरदान था कि जिस किसी पर वह अपनी शक्ति चलायेगा उसका नाश अवश्य ही होगा, किन्तु इस तरह वह उस शक्तिका उपयोग केवल एक ही बार कर सकेगा। कर्ण इस शक्तिका उपयोग अर्जुनके विरुद्ध करना चाहता था। किन्तु चूंकि उसका प्रयोग घटोत्कच पर हो चुका था, इसलिए अब अर्जुनको उसका कोई भय नहीं रह गया।

द्रोणाचार्यका सेनापतित्व

१०. दूसरे दिन द्रोणने द्रौपदीके पिताको और तीन भाइयोंको मार डाला। इस कारण द्रौपदीके बड़े भाई धृष्ट-द्युम्न और द्रोणके बीच दारुण युद्ध हुआ। लगातार पांच दिनोंकी कड़ी मेहनतसे थके हुए द्रोणने अन्तमें अपने शस्त्र रख दिये और कुछ देरके लिए उन्होंने समाधि लगाई। यह मौका देखकर धृष्टद्युम्नने द्रोणका सिर उतार लिया।

द्रोण-वध

११. द्रोणके बाद कर्ण सेनापति बना। उसके और अर्जुनके बीच घमासान युद्ध हुआ। उन दोनोंमें से किसी एकको श्रेष्ठ सिद्ध करना कठिन था। किन्तु कर्ण गर्विष्ठ और डींगें हांकनेवाला था। उसने अब तक दुर्योधनको गलत सलाह देकर उससे अनेक अकर्म करवाये थे। लड़ाईमें उसके भाग्यने पलटा खाया। उसके रथका पहिया अचानक एक गड्ढेमें फंस गया। उसे बाहर निकालनेके लिए उसने अपने शस्त्र एक ओर रख दिये और अर्जुनसे भी कहा कि वह कुछ देरके लिए लड़ाई रोक दे। किन्तु कृष्णने अर्जुनको ऐसा करनेसे साफ मना कर दिया और कहा — "जिसने पग-पग पर अधर्म किया है, उसे इस समय स्वार्थके लिए धर्मका आश्रय लेनेका कोई अधिकार नहीं।" इस कारण अर्जुन अपने बाण बरसाता रहा। कर्ण पहियेको निकालने जा रहा था कि अर्जुनके एक बाणसे घायल होकर वह मर गया।

कर्ण-वध

१२. अब कौरवोंका पतन होने लगा। दुर्योधनको छोड़कर उसके सब भाई, अधिकांश योद्धा और सेना युद्धमें काम आ

चुकी थी। आखिर दुर्योधनको भागकर एक

दुर्योधन-वध

तालाबमें छिप जाना पड़ा। वहां भी वह पकड़ा गया। वहीं भीम और दुर्योधनके बीच गदा-युद्ध हुआ। उस समय भीमने छलपूर्वक युद्ध करके कौरव-राजाकी जांघ पर गदाका प्रहार किया और उसे घातक रूपसे घायल कर दिया।

१३. अब लड़ाई समाप्त हो गई। पाण्डवोंने कौरवोंके तम्बुओं पर कब्जा कर लिया और उनमें अपने पक्षके रहे-सहे लोगोंको रख दिया। रातको अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा यादवने उन तम्बुओंमें घुसकर नींदमें पड़े हुओंकी हत्या कर दी। इसमें धृष्टद्युम्न और द्रौपदीके पुत्रादि मारे गये। कृष्णने दीर्घदृष्टि रखकर पाण्डवोंको सलाह दी थी कि वे उन तम्बुओंमें रातको न रहें। इसलिए पाण्डव वहां नहीं सोये थे। फलतः वे ही बच पाये।

१४. इस तरह कृष्णको अपना कर्णधार बनाकर पाण्डव इस रण-नदीको तो पार कर गये, पर उनकी यह जीत हारसे अधिक उज्ज्वल नहीं थी। पाण्डवोंके पक्षमें पांचों भाई, कृष्ण और सत्राजित नामक यादव, ये सात बचे। कौरव-पक्षमें कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा, ये तीन ही बाकी रहे।

१५. लड़ाई समाप्त होनेके बाद युधिष्ठिर पश्चाताप करने लगे। उन्होंने राज्य स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया।

परीक्षितका पुनर्जीवन

कृष्णने उन्हें बहुत समझाया, पर उनके मनका समाधान नहीं हो सका। अन्तमें कृष्ण उन्हें [illegible] पड़े हुए भीष्मके पास ले गये। भीष्मने राजधर्म और

मोक्षधर्मका जो उपदेश किया, उससे युधिष्ठिरका समाधान हो गया और वे राज्य करनेके लिए राजी हो गये । युधिष्ठिरका अभिषेक करके और उन्हें अश्वमेध करनेकी सलाह देकर कृष्ण सहज ही निवृत्त हुए थे कि इतनेमें पाण्डवों पर एक और संकट आ पड़ा । युद्धमें पाण्डवोंके सारे पुत्र मारे गये थे, केवल अभिमन्युकी विधवा पत्नी उत्तरा उन दिनो सगर्भा थी । उसी पर वंशके विस्तारका आधार था । पर अन्त-अन्तमें अश्वत्थामाने उस गर्भ पर ब्रह्मास्त्र[1] चला कर उसे नष्ट कर डाला था । इस कारण वह बालक मरा हुआ जन्मा । अब वंशके बने रहनेकी सारी आशाएं नष्ट हो गईं । स्त्रिया रोने-पीटने लगी । उत्तराने कृष्णके सामने भारी विलाप किया । कृष्ण उसे देख न सके । उनका हृदय दयासे द्रवित हो उठा । वे उत्तराके कमरेमें गये । आचमन करके एक आसन पर बैठे । फिर मृत बालकको गोदमें लेकर ऊंचे स्वरमें बोले —

१. महाभारतके युद्धमें ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, वैष्णवास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि अनेक अस्त्रोके नाम आते है। ऐसा माना जाता है कि ये मन्त्र-विद्याकी शक्तिया हैं। यह अस्त्र-विद्या अब लुप्त हो चुकी है, पर यह मानना गलत होगा कि ये बातें मिथ्या हैं। मन्त्रसे साप, बिच्छू आदिका विष उतारनेवाले आज भी पाये जाते हैं। एक जमाना था जब भारतवर्षमें लोगोको मन्त्र-विद्या सिद्ध करनेका व्यसन हो गया था। जैसा कि सब असाधारण मामलोमें होता है, उसी तरह इनका भी बहुत दुरुपयोग किया जाता है और इनके नाम पर पाखण्ड चलते हैं। अतएव जो लोग इस प्रकारकी विद्याओंके बारेमें अश्रद्धा रखते हैं, वे अधिक सुरक्षित मार्ग पर होते हैं। जिस चीजको हम समझ नहीं सकते उसमें श्रद्धा रखनेसे संकोच करनेमें कोई दोष नहीं। इसमें जितनी सचाई होगी, अनुभवके बाद उसमें वैसी श्रद्धा उत्पन्न होगी ही।

' मैं आज तक मजाकमें भी असत्य नहीं बोला हूं और मैंने युद्धमें कभी पीठ नहीं दिखाई है। मेरे इस पुण्यसे यह मृत बालक जी उठे! मेरी अखण्ड धर्मप्रियताके कारण और धर्मके अधिष्ठाता ब्राह्मणोंके प्रति मेरे पूज्य भावके कारण अभिमन्युका यह पुत्र जी उठे! मैंने विजयमें भी दूसरोंका विरोध नहीं किया, इस कारण इस बालकके प्राण लौट आयें! यदि मैंने कंस और केशीका वध धर्मपूर्वक किया हो, तो उसके कारण यह बालक फिरसे जी उठे!" श्रीकृष्ण इस प्रकार बोल रहे थे कि इतनेमें धीरे-धीरे बालककी सांस चलने लगी और थोड़ी ही देरमें उसने रोना शुरू कर दिया। यही बालक आगे चलकर राजा परीक्षित बना। पुराणकी कथाके अनुसार इन्हें शुक देवने भागवत सुनाई थी। इसके बाद युधिष्ठिरका अश्वमेध हुआ। यज्ञको उत्तम रीतिसे सम्पन्न करवाकर श्रीकृष्ण द्वारिका पहुंचे।

उत्तर-पर्व

युद्धके बाद कृष्णका शेष जीवन अधिकतर द्वारिकामें ही बीता। कुछ लोगोंका खयाल है कि युद्ध समाप्त होनेके बाद कृष्ण ३६ वर्ष और जिये और कुछ मानते हैं कि वे १८ वर्ष जिये। इस अवधिमें उन्होंने अनेक मुमुक्षुओंको ज्ञानका उपदेश किया; गो-ब्राह्मणकी रक्षा की, गरीबोंको दान देकर उनके दुःख दूर किये। इनमें एक सुदामाकी कथा प्रसिद्ध है।

२. सुदामा और कृष्ण सान्दीपनिकी शालामें एक साथ पढ़े थे और दोनोंके बीच घनी मित्रता हो गई थी। किन्तु सुदामाकी गृहस्थी बड़ी गरीबीमें बीती। एक बार अपनी पत्नीके आग्रहके कारण वह कृष्णसे सहायता प्राप्त करनेकी आशासे द्वारिका पहुंचे।

सुदामा

मित्रको भेंटमें देनेके लिए गरीब ब्राह्मणी कहींसे दो मुट्ठी चिउड़ा मांग लाई और उसे सुदामाकी चादरके छोरमें बांध दिया। कृष्ण रुक्मिणीके महलमें बैठे थे, तभी सुदामा वहां जा पहुंचे। उन्हें देखते ही कृष्ण प्रसन्न होकर पलंगसे नीचे कूद पड़े। दोनोंकी आंखोंसे आंसुओंकी धाराएं बह निकलीं। कृष्णने गरम पानीसे सुदामाके चरण धोये और उस चरणोदकको अपनी आंखों पर लगाया। उन्होंने मधुपर्कसे सुदामाकी पूजा की और उन्हें अपने ही पलंग पर बैठा लिया। दोनों मित्रोंने बचपनकी और विद्यार्थी-अवस्थाकी चर्चा करनेमें सारी रात बिता दी। कृष्णने सुदामासे उनके परिवारके सारे हाल पूछे और बड़े प्रेमसे भाभी द्वारा भेजी गई भेंटकी मांग की! सुदामाने बड़े संकोचके साथ चिउड़ेकी छोटी-सी पोटली निकालकर कृष्णको दे दी। कृष्णने उसमें से एक मुट्ठी भरी और उसकी तारीफ कर-करके उसे इस तरह खाने लगे मानो अमृत मिल गया हो। दूसरी मुट्ठी रुक्मिणी आदिने मांग ली। दूसरे दिन कृष्णकी स्त्रियोंने सुदामाको बड़े प्रेमसे स्नान कराया और मिष्टान्नका भोजन कराकर उनका अच्छा आतिथ्य किया। जब सुदामा अपने घर जानेको निकले, तो कृष्ण उन्हें दूर तक विदा करने गये। संकोचके कारण सुदामाने कृष्णसे कोई याचना नहीं की। कदाचित् इस आशंकासे कि मित्रताका समानतावाला पवित्र सम्बन्ध दाता और याचकके हीन सम्बन्धसे कहीं कलुषित न हो जाय, कृष्णने भी विदाईके समय उन्हें कुछ नहीं दिया; किन्तु जब सुदामा घर पहुंचे तो उन्होंने अपने घरको समृद्धिसे भरा-पूरा पाया। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह सारी सम्पत्ति

कृष्णकी ओरसे आई है तब उनका हृदय प्रेम और कृतज्ञतासे भर आया और उन्हें कृष्णकी मित्र-भक्तिके लिए आश्चर्य हुआ।

यादवोंका राजमद

३. राजमद कृष्णके समयके क्षत्रियोंका प्रधान दूषण था। कहा जा सकता है कि इस मदका मर्दन करना ही कृष्णके जीवनका ध्येय था। इसी उद्देश्यसे उन्होंने राज्यलोभी और उन्मत्त कंस, जरासन्ध, शिशुपाल आदिका नाश किया था। इसी उद्देश्यसे कौरव-कुलका सर्वनाश करानेमें भी वे हिचकिचाये नहीं; किन्तु अब वही राजमद वहांसे उतरकर उनकी अपनी ही जाति पर सवार हो गया। श्रीकृष्णके प्रभावसे यादव समृद्धिके शिखर पर पहुंच गये थे। कोई उनसे 'तू' कहनेकी हिम्मत नहीं करता था। अतः वे भी अब उन्मत्त बन गये थे। सिर पर किसी शत्रुके न रहनेसे अब वे विलासी भी बन गये। जुए और शराबका सेवन खुले आम करने लगे। देवों और पितरोंकी निन्दा और आपसका द्वेष दिन पर दिन बढ़ने लगा। वे स्त्रियों पर भी निर्लज्जतापूर्ण अत्याचार करने लगे। यादवोंकी यह अवनति देखकर कृष्ण बहुत दुःखी हुए। उस स्थितिको सुधारनेके लिए वृद्ध वसुदेव राजाने बहुत प्रयत्न किया। शराब पीनेकी मनाही करवा दी। पर यादवोंने छिपे-छिपे पीना जारी ही रखा। फलतः उनका उन्माद कम नहीं हुआ। कृष्ण समझ गये कि यह सारी विपरीत बुद्धि विनाश-कालकी निशानी है। अतएव सब प्रकारके कार्योंसे उनका मन उदास रहने लगा।

४. विक्रम संवत्से पहले ३०१० (अथवा ३०२८) वें वर्षमें कातिक वदी अमावस्याके सूर्य-ग्रहण पड़ा था। उस वर्षके

जगानेमें, अपने पराक्रम द्वारा निस्सहाय राजाओंकी सहायता करनेमें और साम्राज्य-लोभी राजाओंका सहार करनेमें बीती। उन्होंने अपने जीवनका तीसरा काल तत्त्व-चिन्तन और ज्ञान-प्राप्तिमें विताया। इसके बाद उन्होंने युद्धोंसे मुह मोड़ लिया, फिर भी अपनी चतुराईसे न्यायीको न्याय दिलानेमें वे कभी पीछे नहीं हटे। उन्हींके कारण नरकासुरके पंजेसे अबलाओंको मुक्ति मिली, जरासन्धका पुरुप-मेध रुका और पाण्डवोंको न्याय मिला। राज-काजकी बड़ी-से-बड़ी खटपटमें पड़कर भी उन्होंने कभी मजाकमें भी असत्य भापण नहीं किया, धर्मका पक्ष नहीं छोड़ा और विजयमें भी शत्रुका विरोध नहीं किया। महर्षि व्यासने उनकी इस प्रतिज्ञाका कीर्तन किया है और इसके प्रमाणके रूपमें परीक्षितके पुनरुज्जीवनका वर्णन किया है। इतना होने पर भी जहां कृष्ण पर अनीति या कपटका अभियोग लगता-सा दीखता है, वहां उसके तीन कारण हैं: (१) उस समयकी यथार्थ बातोंको समझनेमें किसी प्रकारकी कमी; (२) जब सम्प्रदाय-प्रवर्त्तकोंने श्रीकृष्णको पूर्ण पुरुपोत्तम सिद्ध करनेका प्रयत्न किया, तो पाठकोंके मन पर यह सिद्धान्त ठसानेके लिए कि भगवानको तो सत्कर्म और कुकर्म सब करनेकी स्वतन्त्रता है और सब-कुछ करते हुए भी वह तो निर्लेप ही रहता है, कृष्णको नीति तथा अनीति दोनोंका आचरण करनेवाले व्यक्तिके रूपमें चित्रित करनेके लिए उनके जीवनमें नये-नये वृत्तान्त जोड़े और बढ़ाये गये। इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत ही अनुचित हुआ। कृष्णको पूर्ण पुरुपोत्तम बनानेकी कोशिशमें उन्होंने उन्हें साधारण नीति-परायण सज्जनसे भी

६. कृष्णने अपने सारथीको बुलाया और कहा कि वह हस्तिनापुर जाकर पाण्डवोंको ये सारे भयंकर समाचार सुनाये और अर्जुनसे कहे कि वह द्वारिका आकर यादवोंकी स्त्रियों और बच्चोंको हस्तिनापुर ले जाये ।

निर्वाण

उधर सारथी हस्तिनापुर गया, इधर कृष्णने स्त्रियों और बच्चोंको द्वारिका पहुंचा दिया । बलरामने प्राणोंका निरोध करके देह त्यागनेके लिए समुद्र-किनारे आसन जमाया । कृष्णने द्वारिका जाकर वसुदेव-देवकीके चरणोंमें सिर रखा, उन्हें सारे शोक-जनक समाचार सुनाये और योग द्वारा प्राण-त्याग करनेका अपना निश्चय बताया । नमस्कार करके कृष्ण नगरके बाहर निकल आये और एक वृक्षके सहारे बायों जांघको टिकाकर और उस पर दाहिना पैर रखकर ब्रह्मासनकी स्थितिमें बैठे । इसी बीच एक भीलने कृष्णके पैरके तलवेको मृगका मुंह समझकर निशाना ताका और बाण चला दिया । इस प्रकार अचानक ही इन महापुरुषका अन्त हुआ ।

७. श्रीकृष्णका समूचा चरित्र निःस्वार्थ लोक-सेवाका एक अनुपम उदाहरण है । अपने जन्मके समयसे लेकर लगभग सौ या सवासौ साल तक वे कभी चैनसे नहीं बैठे ।

कृष्ण-महिमा

बचपन गरीबीमें दूसरोंके घर बिताया; पर उस बचपनको भी उन्होंने ऐसे सुन्दर ढंगसे सुशोभित किया कि भारतवर्षकी अधिकांश जनता बालकृष्ण पर ही मुग्ध होकर उनके इतने ही जीवनको अवतार माननेमें धन्यता अनुभव करती है । उनकी जवानी माता-पिताकी सेवामें, भटकते हुए स्वजनोंको इकट्ठा करके उनमें नवजीवन

टिप्पणियां

गोकुल-पर्व

टिप्पणी–१ : आकाश-वाणी— हममें से हरएकको कभी-कभी यह अनुभव होता है कि चित्तमें भूत-भविष्य-वर्तमानका ज्ञान विद्यमान है। जिसने परिपूर्ण रूपसे सत्यका पालन किया है, उसकी वाणी भविष्यकी घटनाओंके वारेमें भी सत्य सिद्ध होती है। प्रायः दूसरोंको भी इसका स्वाभाविक स्फुरण होता है। लेकिन साधारण लोग इस ज्ञानको तभी पहचानते हैं, जब किसी अद्भुत और ध्यान खींचनेवाली घटनाके साथ इसका स्फुरण हो। यह ज्ञान कभी किसी भेदी आवाजके रूपमें और कभी जाग्रत या स्वप्नकी अवस्थामें किसी व्यक्तिके दर्शनके साथ प्राप्त होता है और तभी इसे आकाश-वाणी या दिव्य दर्शन कहा जाता है।

टिप्पणी–२ : हमारे युगके . . . हैं — आज बहुतेरे अनुभवियोंका यह विचार है कि हम पर ठेठ छोटी उमरसे ही ऐसे हलके संस्कार पड़ने लगते हैं कि आजके जमानेमें आठ-दस सालके बालकको भी ब्रह्मचर्य-विरोधी विचारोंसे मुक्त नहीं माना जा सकता। जिस विषयके बारेमें बालकको कोई ज्ञान नहीं है, उस विषयके विचार देकर उसे उस पर सोचनेका मौका देना ठीक नहीं, इस डरसे उस विषयके बारेमें मौन रखना उन्हें उचित नहीं मालूम होता। आजके तात्कालिक उपचारकी दृष्टिसे बालकोंको ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें सावधान कर देनेकी यह सलाह शायद अनुचित न हो, पर हमें याद रखना चाहिये कि यह रोगका उपचार है, रोक नहीं। सच्चा उपाय तो वातावरणको शुद्ध बनानेमें, हीन कोटिके संस्कार डालनेवाले प्रसंगोंसे बालकोंको दूर रखनेमें, उन्हें निर्दोष व्यवहारका दर्शन करानेमें और ऐसा वातावरण निर्माण करनेमें है

हलके रूपमें चित्रित किया; और (३) उपर्युक्त हेतुसे ही कृष्ण-कथाको किसी अमूर्त विचारकी मूर्त रूपकात्मक कथा समझनेकी कल्पना शुरू हुई और इस कल्पनाके पोषकोंने अपने कल्पित रूपकका अधिक विस्तार करनेके लिए तदनुकूल वृद्धि की। उदाहरणके लिए, वैष्णव विचारकोंका कथन यह है कि राधा-विवाह, गोपियोंके साथका कल्पित व्यभिचारी सम्बन्ध और रास-लीला आदि सब रूपक हैं। यदि यह सच है, तो ये कथाएं काल्पनिक सिद्ध होती हैं[1]।

८. कृष्णके देहान्तके बाद वृद्ध वसुदेव, देवकी और कृष्णकी पत्नियोंने काष्ठ-भक्षण किया। बाकीके लोगोंको अर्जुन हस्तिनापुर ले गया। कौरवोंका सर्वनाश करनेवाला धनुर्धारी अर्जुन बुढ़ापेके और कृष्ण-वियोगके कारण इतना निर्बल हो गया था कि मार्गमें कुछ लुटेरोंसे वह अपने संगकी रक्षा नहीं कर सका और उसका द्रव्य लुट गया। इस छोटीसी घटनासे प्रकट होता है कि राजाके नाते पाण्डवोंकी प्रतिष्ठामें और उनके शासनमें कितनी ढिलाई आ चुकी थी। युधिष्ठिरने यादवोंके अलग-अलग वंशजोंको अलग-अलग स्थानोंमें राजा बना दिया और इस प्रकार यादवोंके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। बादमें परीक्षितको सिंहासन पर बैठाकर पांचों भाई द्रौपदीके साथ हिमालयकी ओर चल दिये। वहीं उनका अन्त हुआ।

पाण्डव हिमालयकी ओर

९. कृष्णके अन्तके बाद भारतवर्षकी अवनतिका आरम्भ हुआ।

१. देखिये, अन्तमें टिप्पणी – ९।

टिप्पणियां

गोकुल-पर्व

टिप्पणी-१ : आकाश-वाणी—हममें से हरएकको कभी-कभी यह अनुभव होता है कि चित्तमें भूत-भविष्य-वर्तमानका ज्ञान विद्यमान है। जिसने परिपूर्ण रूपसे सत्यका पालन किया है, उसकी वाणी भविष्यकी घटनाओंके बारेमें भी सत्य सिद्ध होती है। प्राय दूसरोंको भी इसका स्वाभाविक स्फुरण होता है। लेकिन साधारण लोग इस ज्ञानको तभी पहचानते हैं, जब किसी अद्भुत और ध्यान खीचनेवाली घटनाके साथ इसका स्फुरण हो। यह ज्ञान कभी किसी भेदी आवाजके रूपमें और कभी जाग्रत या स्वप्नकी अवस्थामें किसी व्यक्तिके दर्शनके साथ प्राप्त होता है और तभी इसे आकाश-वाणी या दिव्य दर्शन कहा जाता है।

टिप्पणी-२ : हमारे युगके . . . है—आज बहुतेरे अनुभवियोंका यह विचार है कि हम पर ठेठ छोटी उमरसे ही ऐसे हलके सस्कार पड़ने लगते हैं कि आजके जमानेमें आठ-दस सालके बालकको भी ब्रह्मचर्य-विरोधी विचारोंसे मुक्त नही माना जा सकता। जिस विषयके बारेमें बालकको कोई ज्ञान नहीं है, उस विषयके विचार देकर उन्हें उस पर सोचनेका मौका देना ठीक नही, इस डरसे उस विषयके बारेमें मौन रखना उन्हें उचित नही मालूम होता। आजके तात्कालिक उपचारकी दृष्टिसे बालकोंको ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें सावधान कर देनेकी यह सलाह शायद अनुचित न हो, पर हमें याद रखना चाहिये कि यह रोगका उपचार है, रोक नही। सच्चा उपाय तो वातावरणको शुद्ध बनानेमें, हीन कोटिके संस्कार डालनेवाले प्रसंगोंसे बालकोंको दूर रखनेमें, उन्हें निर्दोष व्यवहारका दर्शन करानेमें और ऐसा वातावरण निर्माण करनेमें है

कि जिससे उन्हें इस बातकी गन्ध भी न आये कि बाहरी व्यवहारके भीतर कोई चोर-व्यवहार भी छिपा है। हमारे कई कुटुम्बोंमें मानो बालकको इनामका लालच दिया जाता है अथवा अन्तिम धमकीके रूपमें अच्छी लड़कीसे शादी कराने या न करानेकी बात कही जाती है। बालकोंको कही जानेवाली हमारी अनेक लोक-कथाओंका एक लक्ष्य किसी राज-कुमारीसे विवाह करा देनेका होता है—मानो विवाह ही जीवनका एकमात्र ध्येय हो! हमारे विलासपूर्ण विनोद, राजसी भोजन, हलके उप-न्यास, बीभत्स नाटक और सिनेमा तथा बेहयाईसे भरे विज्ञापन कितने किशोरों और किशोरियोंके जीवनको उनके अपने और समाजके लिए शापरूप बना देते हैं, इसका विचार करते हुए दिल कांप उठता है। इन लोक-कथाओं या उपन्यासों, नाटकों या सिनेमाओंका संग्रह और समालो-चना इतिहास-संशोधक भले करें; धूलमें से सोना निकालनेवालोंकी तरह सारासारका विचार करनेवाले लोगोंकी भी आवश्यकता है ही। पर यह विचार गलत है कि जो पुरानी चीजें समाजमें ओतप्रोत हो चुकी हैं, वे केवल इसी कारण समाजके सामने सदा ही रखने योग्य हैं।

हमारे भक्त भी इसी वातावरणमें पले थे। उनके हृदयोंमें भी सूक्ष्म रूपसे विलासी वृत्तियोंके बीज मौजूद थे, जो उनके भजनोंमें प्रकट हुए बिना रहे नहीं हैं। उन्होंने कृष्णको स्त्रियोंके लिए रूठने, स्त्री पानेके लालचमें राजी होने, गोपियोंके साथ इशारेबाजी करने और राधाके साथ छिप-छिपे ब्याह कर लेनेवाले बालक और व्यभिचारी युवकके रूपमें चित्रित किया है और इन सबका बचाव इस मान्यताकी आड़में किया है कि 'परमेश्वरकी सब लीलाएं दिव्य और निर्गुण हैं'। इन कथाओंमें रहनेवाली निर्गुणता और दिव्यता तो उनकी निर्मल श्रद्धामें ही है। यह सच है कि [illegible] में से [illegible] पहुंचा जाता है। किन्तु जैसे हम अपना [illegible] नहीं [illegible], वैसे ही इस सिद्धान्तमें समायी हुई [illegible] यदि [illegible] न सके, किन्तु इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि यह सिद्धान्त गलत है।

पाण्डव-पर्व

टिप्पणी-३ : पुरुषमेध — जिस यज्ञमें बलिके रूपमें मनुष्यको मारा जाता है, उसे नरमेध या पुरुषमेध कहते हैं। प्राचीन कालमें राजा और ब्राह्मण सर्वोपरि स्थान प्राप्त करनेके लिए ऐसा भयंकर यज्ञ करते थे। वेदमें हरिश्चन्द्र और शुनःशेपकी एक कथा है। उसमें हरिश्चन्द्र शुनःशेपकी बलि देकर वरुण देवताको सन्तुष्ट करना चाहता है।

एक प्राचीन लेखकने लिखा है :

वृक्षांश्छित्वा, पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरकः केन गम्यते॥

पेड़ोंको काटकर, पशुओंको मारकर और लहूका कीचड बनाकर किये गये यज्ञोंसे यदि स्वर्गमें पहुँचा जाता है, तो नरकमें कौन जाता होगा ?

टिप्पणी-४ : राजसूय-यज्ञ — सम्राट् अथवा चक्रवर्ती राजा अपने राज्यारोहणके अवसर पर (अथवा बादमें दूसरे राजाओंकी सम्मतिसे चक्रवर्ती माना जाने पर) यह यज्ञ करता था।

अश्वमेध — अत्यन्त बलवान होनेका दावा करनेवाला राजा अश्वमेध करता था। सब उसका बल स्वीकार कर लें अथवा वह सबसे बलवान सिद्ध हो जाय, तो वह ऐसा यज्ञ कर सकता था।

टिप्पणी-५ : अवभृथ-स्नान — हिन्दू जीवनके सब संस्कारों, विधियों और विशेष उत्सवोंके अवसर पर यज्ञ आवश्यक माना जाता है। प्रत्येक यज्ञका आरम्भ और उसकी पूर्णाहुति स्नानसे होती है। उपवीत धारण करनेसे पहले नहाना होता है और विद्याध्ययनकी समाप्ति पर भी नहाना आवश्यक है। इस तरह नहानेवाला स्नातक कहा जाता है। इसी प्रकार विवाह, अन्त्येष्टि आदि सब संस्कारोंमें स्नान आवश्यक इसी तरह राजसूय आदि विशिष्ट यज्ञोंका आरम्भ और उनकी भी स्नानसे होती है। यह अन्तिम स्नान अवभृथ-स्नान कहलाता

द्यूतपर्व

टिप्पणी–६ : शकुनिका ताना — एक पाप दूसरे पाप कराता है। एक दोपको छिपानेके लिए वह झूठ वुलवाकर दूसरा दोप कराता है। दुष्ट लोग हमारे द्वारा किये गये पापोंसे लाभ उठाना चूकते नहीं। अपना मतलव गांठनेके लिए वे उस पापका ताना देकर या उसे प्रकट कर देनेका डर दिखाकर हमसे दूसरा पाप करा लेते हैं। पापका उलाहना सुनने या उसे प्रकट होते देखनेकी शक्ति हममें नहीं होती, इसलिए हम दुष्टों की पापपूर्ण इच्छाके वश होकर दूसरा पाप करते हैं; किन्तु इससे दिन पर दिन हमारी अवनति ही होती है। आखिर इसका परिणाम यह होता है कि या तो हमारी पाप-सम्वन्धी भावना ही भोथरी पड़ जाती है अथवा सव पापोंका घड़ा भर जानेसे एकसाथ उसका फल भोगनेका दुःखद समय आ पहुंचता है। पापी साथीकी सलाह यह होती है कि पापके वारेमें वेहया वन जाना चाहिये; वह हमसे यह माननेको कहता है कि वेहयाईमें हिम्मत है। लेकिन थोड़ा भी विचार करनेसे पता चलेगा कि उसमें तो उलटी कायरता है। कोई हमें अपने पापकी याद दिलाये या उसे प्रकट करे, तो हम उससे डरते हैं। पापका प्रायश्चित्त कभी-न-कभी करना ही होगा, दिलके अन्दर इस आशयकी जो एक अव्यक्त चिन्ता बनी रहती है और मन पर दुःख भोगनेका जो डर छाया रहता है, उसके कारण सहज ही यह इच्छा पैदा होती है कि प्रायश्चित्तकी वह घड़ी कुछ समयके लिए भी टल जाये तो अच्छा हो। इस अकल्याणकारी इच्छाको पापी साथीके उलाहनों और धमकियोंका सहारा होता है। इस तरह हम उसके शिकार बनकर दूसरा पाप करनेको तैयार हो जाते हैं।

टिप्पणी–७ : भाइयोंको दाव पर लगाना — संयुक्त परिवारका कुलपुरुष परिवारकी सम्पत्तिका केवल व्यवस्थापक ही नहीं, स्वामी भी है; वह केवल सम्पत्तिका ही स्वामी नहीं, बल्कि सारे कुटुम्बियोंकी शारीरिक स्वतंत्रताका भी स्वामी है — कृष्णके कालमें इस प्रकारके

सामाजिक स्थिति थी ऐसा इस घटनासे पता चलता है। जहां भाई भी सम्पत्ति माने जाते हों वहां स्त्रीकी भी वही दशा हो, तो उसमें आश्चर्य नहीं।

टिप्पणी–८ : द्रौपदीके वर — द्रौपदीका चारित्र्य उसकी वर-याचनामें चमक उठता है। उसके पतियोंने अनेक अपराध और अधर्म किये थे, उसके ऊपर स्त्री-जाति पर आनेवाला भारी-से-भारी संकट लाद दिया था, फिर भी इन कारणोंसे उसने अपने पति-प्रेममें कोई कमी नहीं आने दी। उसके इस प्रेममें कुत्तेकी-सी स्वामीभक्ति नहीं थी, बल्कि एक स्वतंत्र स्त्रीको अपने पतिके लिए जो भावना होनी चाहिये, वही थी। अब द्रौपदी पत्नी — अर्थात् दासी या सम्पत्तिका अंश — नहीं रही, बल्कि मित्र बन गई। पूतका कपूतपन भी माके वात्सल्य-प्रवाहको रोक नहीं सकता। पतिके प्रति द्रौपदीकी भावना भी वैसी ही थी। प्रीतिकी अपनी यही रीति है। जिसे हमने एक बार अन्तरसे चाहा, उसका कोई भी दोष या हमारा मोह उस चाहको तिलभर भी कम करता है, तो उस चाह अथवा प्रेमका कोई महत्त्व नहीं।

उत्तर-पर्व

टिप्पणी–१ : कपटका आरोप — मुझे यह लगता है कि कृष्णने अपना जीवन नीचे लिखे सिद्धान्तों पर खड़ा किया था :

(१) किसी भी मनुष्यकी सहज प्रकृतिको जबरदस्तीसे मोड़नेमें कोई सार नहीं। राजसी या तामसी प्रकृतिवाले मनुष्यसे एकाध बार, सात्त्विक वेग या भीरुताके क्षणिक जोशमें, अत्यन्त धैर्यशील और निःस्पृह मनुष्य द्वारा सहे जाने योग्य परिणामोंसे युक्त भारी त्याग करा लेनेसे उसका कल्याण ही होगा, यह कहना कठिन है।

(२) ज्ञानी पुरुष बड़े-बड़े सिद्धान्तोंको कार्यान्वित न करा सके, तो उसके लिए समाजको छोड़ देना उचित नहीं। उसे लोक-संग्रहके

लिए अज्ञानी अर्थात् सकाम पुरुषोंके बीच बुद्धि-भेद पैदा न करते हुए युक्तभावसे यानी नाराजीसे नहीं बल्कि प्रयत्नपूर्वक कर्मका आचरण करते हुए लोगोंको आगे ले जाना चाहिये।

(३) अतएव, स्वयं अपने लिए जो काम न करे, उस कामको करनेकी सलाह दूसरेको उसके हितकी दृष्टिसे दे और प्रसंग पड़ने पर स्वयं भी उसके लिए वह काम कर डाले।

(४) आसुरी वृत्तिको उसे धारण करनेवाले पुरुषसे भिन्न करना सदा सम्भव नहीं होता। इसलिए यह हो सकता है कि आसुरी वृत्तिका नाश करनेके लिए स्वयं असुरोंका भी नाश करना पड़ जाये।

इन सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखनेसे कृष्णके जीवनके अनेक प्रसंग समझमें आ सकते हैं।

राम-कृष्ण

[उपासनाकी दृष्टिसे समालोचना]

श्रीराम और श्रीकृष्ण वैष्णव हिन्दुओंमें अधिकांशके उपास्य इष्टदेव हैं। दोनोंकी गिनती पुरुषोत्तममें होती है।

पुरुषोत्तम

साधारणतया कोई भी समाज अपने आदर्श पुरुषोंमें किस प्रकारके लक्षणोंकी अपेक्षा रखता है, इसका पता अपने इष्टदेवके सम्बन्धमें उसकी कल्पनासे चल सकता है।

२. हिन्दू समाज जिस दृष्टिसे राम और कृष्णको भजता है, उससे मालूम हो सकता है कि उसकी सहज प्रकृति किस स्थिति तक पहुंचने और किस भावनाके साथ तद्रूप होनेकी है। इसलिए यहां इस बातका कुछ विचार करना उचित होगा कि उत्तम अथवा पूर्णके रूपमें राम और कृष्णके स्वरूप कैसे प्रतीत होते हैं।

३. यह कहना एक दुस्साहस ही माना जायेगा कि राम श्रेष्ठ हैं अथवा कृष्ण। ये दोनों आर्य-प्रकृतिके ऐसे दो सुन्दर स्वरूप हैं, जो कुछ अंशोंमें समान हैं, तो कुछमें भिन्न भी। जिसे अपने हृद्गत भावोंके साथ जो प्रकृति विशेष रूपसे मिलती-जुलती मालूम होगी, उसमें उसके प्रति अधिक भक्ति प्रकट होगी।

४. जीवन एक महान और कठोर व्रत है, आयुष्यके अन्त तक पहुंचनेवाली सिपाहीगीरी है। राम-चरित्रका तात्पर्य

राम-चरित्रका तात्पर्य

यह है कि अपनी निर्दोष लगनेवाली अभिलाषाओंको भी दबाया जाय, अपने मनके क्लेशको मनमें ही सहेजा जाय। जीवनके कर्तव्योंका पालन करनेके लिए रात और दिन मूक भावसे अपना सर्वस्व होमा जाय — जिन्हें अपना माना है, इस जीवन-यज्ञमें उनका भी बलिदान किया जाय। अपनी पितृ-भक्तिमें, गुरु-भक्तिमें, पत्नी-व्रतमें, बन्धु-प्रेममें, प्रजा-पालनमें — जहां कहीं भी देखें, वहां राम हमें इस जीवन-यज्ञके यजमान और व्रतधारी दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने जीवनको कभी भी खेल-कूदका अखाड़ा नहीं बनाया। उनके समय-पत्रकमें दो घड़ीकी गपशपके लिए कोई स्थान नहीं। न तो उनके साथ और न उनके सम्मुख, कभी हंसी-मजाक संभव है। उनके मुख परसे गंभीरताकी छटा दूर होती ही नहीं। वसिष्ठ, कौशल्या, दशरथ — ये सब रामके गुरुजन अवश्य थे, पर रामकी धार्मिकता, गम्भीरता और उनके दृढ़ निश्चयका प्रभाव इन सब पर भी पड़े बिना रहता नहीं था। रामको यह सोचना ही चाहिये कि आज्ञा कैसी की जाय। रामके रोम-रोमसे उनका महाराज-पद जगमगा उठता है। उनके दरबारमें खड़े रहनेवालेको इतना शुद्ध होकर ही जाना पड़ता है कि कोई उस पर असत्य, अपवित्रता अथवा अन्यायका संदेह तक न कर सके। उनकी कसौटी दिव्य ही होती थी। उनकी न्याय-वृत्ति न पत्नीका, न भाईका और न किसी औरका लिहाज करती थी। उनके हृदयमें स्वजनोंके लिए अतिशय प्रेम अवश्य था; उस प्रेमके कारण भक्तके लिए [illegible]

मारनेके हेतु जितना पुरुषार्थ और पराक्रम आवश्यक है, उसमें वे तिल भर भी कमी नहीं आने देंगे; फिर भी जितना कुछ वे प्रेमके वश होकर करते दीखते हैं, उससे अधिक कर्तव्यकी — सत्त्वरक्षाकी — भावनाको प्रधानता देते जान पड़ते हैं। ऊपर-ऊपरसे देखनेवालोंको उनके अन्तरमें बसनेवाले प्रेमकी गहराईका कुछ पता नहीं चलता; अनेक वर्षोंके निकट सहवाससे ही उसकी प्रतीति होती है। दूसरोंको तो वे निष्पक्ष, न्यायशील, धर्म-प्रिय, आंखोंको चौंधियानेवाले तेजके स्वामी और कठोर शासक ही दिखाई पड़ते हैं। साधारणतया वे अपने प्रेमको बहुतेरे शब्दोंमें या लाड़-दुलारके रूपमें व्यक्त नहीं करते। हम रामको आनन्दके आवेशमें आकर अट्टहास करते हुए क्वचित् ही सुन पाते हैं, किन्तु अपने आश्रितोंके न्यायोचित मनोरथोंको पूरा करके और उनके समस्त विघ्नोंको दूर करके ही वे उन्हें अपने प्रेमकी प्रतीति कराते हैं।

५. श्रीकृष्णमें हम ऐसा ही पराक्रम, इतनी ही पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, दाम्पत्य-प्रेम, कुटुम्ब-प्रेम, भूत-दया, मित्रत्व और ऐसी ही सत्यनिष्ठा, धर्म-प्रियता और जीवनकी पवित्रताके विषयमें पूज्यभावके दर्शन करते हैं, फिर भी उनके निकट जीवन-यज्ञ कोई कठोर व्रत नहीं, एक मंगलोत्सव अथवा व्रतोत्सव[1] है। उनके लिए सुखमें स्वास्थ्यका आनन्द है; मथुरामें गोमान्तक पर जरासन्धके छक्के छुड़ानेका मजा है। द्वारिकामें वैभव है, तो गोकुलमें बछड़ों और गोपोंके साथकी क्रीड़ायें हैं। कुरुक्षेत्रमें कौरवोंके नाशसे असुरोंका संहार होता है, तो प्रभास-तीर्थमें

(हाशिया: कृष्ण-चरित्रका तात्पर्य)

१. व्रत होते हुए भी उत्सव।

होनेवाला यादवोंका संहार भी उनके मन वैसा ही है। यदि एकका शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है, तो दूसरेसे भी शान्तिको डिगने देना जरूरी नहीं।

६. इस कारण कृष्णके साथ रहनेमें हमें कोई संकोच नहीं होता। बालकृष्ण समझकर हम उसे गोदमें खेला सकते हैं अथवा मक्खनके लिए नचा सकते हैं, हम बछड़े बनकर उसके पांव चाट सकते हैं अथवा यह कल्पना कर सकते हैं कि कृष्ण हमारी पीठ पर अपना माथा टिकाये हुए है अथवा हमारे गलेसे लग कर हमसे प्रेम कर रहा है। हम चाहे पवित्र हों या अपवित्र, वह हमारा तिरस्कार नहीं करता। हम खुले दिलसे उसकी थालीमें भोजन कर सकते हैं। उसके साथ घूमते-फिरते समय उससे मर्यादापूर्वक दूर रहकर चलना जरूरी नहीं। हम अपना हाथ उसके कंधे पर रख सकते हैं और उसका हाथ हमारे कंधे पर रह सकता है। क्या सुग्रीव या विभीषण कभी रामको अपना सारथी बनानेकी हिम्मत कर सकते हैं? लेकिन कृष्णसे इसके लिए कहा जा सकता है। रामके दरबारमें जानेवालेको दरबारी रीति-नीतिका ज्ञान होना जरूरी है, किन्तु कृष्णके तो अन्तःपुर तक भी फटेहाल सुदामा बेखटके पहुंच सकता है और बराबरीसे उसके साथ पलंग पर भी बैठ सकता है। रामको पुकारना हो तो 'आप' कहना जरूरी है, किन्तु कृष्ण तो 'तू' का अधिकारी रहा। कृष्णकी भक्तिका रस हम उसके दास बनकर नहीं ले सकते। उद्धव-जैसा कोई उसका दास बनना भी चाहता है, तो वह भी उसके अन्तरङ्गमें प्रवेश करनेवाला विश्वासपात्र [illegible] बन जाता है। समानताके सिवा दूसरा कोई अधिकार

उसे मान्य ही नहीं है। कृष्णके दरबारमें एक ही जाजम बिछी मिलेगी। उसके यहां अमुक दायें और अमुक बायें बैठें, इस प्रकारका शिष्टाचार होता ही नहीं। उसके आसपास तो गोल घेरा बनाकर ही बैठा जाता है। हम नहीं कह सकते कि उसके पास हमेशा गंभीर ज्ञानकी बातें ही सुननेको मिलेंगी। वह तो गोकुलके बछड़ोंकी बातें भी कहता मिलेगा। जिस तरह रामके अगाध प्रेमको उनके अन्तेवासी ही पहचान सकते हैं, उसी तरह कृष्णके ज्ञानकी अगाधता भी निकट परिचयसे ही मालूम हो सकती है। 'देहदर्शी' तो उसे 'अपने समान संसारी' ही समझेगा।[१]

७. कृष्ण हमारे भक्तिभावका भूखा है। यदि हम उसके साथ अनन्य भावसे प्रेम करते हैं, तो वह हमारी त्रुटियां नहीं देखता; वह हमें निबाह लेता है, सुधार लेता है और हमें शीघ्र ही शुद्ध तथा शान्त बना देता है।

८. इस प्रकार राम और कृष्ण दोनों भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंवाली महान विभूतियां हैं। हम जिन देवोंके समान बनना चाहते हैं, वे हमारे इष्टदेव कहलाते हैं। उपासनाका हेतु है उपास्यके समान बनना। राम और कृष्णकी सच्ची उपासना

उपासनाका हेतु

१. "मुक्तानन्द के' हरिजननी गति छे न्यारी;
एने देहदर्शी देखे पोता जेवा संसारी।"

मुक्तानन्द कहते हैं कि हरिजनकी गति निराली होती है। उसे देहदर्शी लोग अपने समान संसारी समझते हैं।

देहदर्शी — शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके सुखको ही प्रधानता देनेवाला।

तभी की जा सकती है, जब हममें उनके समान बननेकी अभिलाषा जागे।

रामोपासनाका मार्ग

९. किन्तु रामके उपासकके लिए अधःपतनकी आशंका कम है। वह तो शुद्ध बनने पर ही अपने देवके मंदिरमें प्रवेश कर सकता है। अपने देवको प्रसन्न करनेके लिए उसे जीवनको व्रत-रूपमें स्वीकार करना ही होता है। उसे दिव्य कसौटीके योग्य बननेकी साधना सतत करनी होती है। उसके भ्रष्ट होनेकी कोई संभावना नहीं। वह तो दिन पर दिन आगे ही बढ़ेगा।

कृष्णोपासनाका मार्ग

१०. कृष्णकी उपासना मोहक है, पर सरल नहीं। जैसा कि सहजानन्द स्वामीने कहा है, कृष्णकी रसिक भक्तिसे भ्रष्ट तो अनेक हो चुके हैं, पर तरनेवाले विरले ही हुए हैं। इसके दो कारण हैं: एक तो गोपी बनकर कृष्णकी भक्ति करनेकी विकृत रीति; और दूसरे, जीवनको उत्सव माननेसे मनुष्यकी स्वाभाविक भोग-वृत्तिको मिलनेवाला प्रोत्साहन।

देव और भक्तका सम्बन्ध

११. उपास्य देव और भक्तके बीचका सम्बन्ध कई प्रकारका हो सकता है: माता अथवा पिता और पुत्रका, बन्धुत्वका, मित्रताका, पति-पत्नीका, पुत्र और माता-पिताका अथवा स्वामी-सेवकका। इन सम्बन्धोंमें से हम अपने इष्टदेवको जैसा सम्बन्धी बनाते हैं, उसके प्रतियोगी सम्बन्धीके भाव हममें प्रतिबिम्बित होते हैं और धीरे-धीरे उन सम्बन्धोंके योग्य लक्षण हमारा स्वभाव बन जाते हैं। यदि हम अपने इष्टदेवकी उपासना माता-पिताके रूपमें करते हैं और यदि

हमारी भक्ति सच्ची होती है, तो हममें आदर्श पुत्रके गुण प्रकट होते हैं। इसी प्रकार यदि हम इष्टदेवको पतिके रूपमें भजते हैं, तो हममें स्त्रीत्वके भाव प्रकट होते हैं। जारके रूपमें भजें, तो हममें वैसी स्त्रीके हावभाव प्रकट होंगे। उपासना-भक्ति मनुष्यको पूर्णता तक पहुंचानेवाला योग है।

गोपी-भक्ति

पुरुषके लिए पौरुषका विकास और स्त्रीके लिए स्त्रीत्वका विकास पूर्णता है। पुरुषमें स्त्रीत्वका भाव और स्त्रीमें पुरुषत्वका भाव अधोगति है। यदि पुरुष अपनेको स्त्री मानता रहेगा, तो वह अपने पौरुषको गंवानेका मार्ग पकड़ेगा। इससे उसे स्त्रीत्वकी पूर्णता तो प्राप्त होगी ही नहीं, उल्टे पुरुषार्थ घटेगा और स्त्रीको शोभा देनेवाले और पुरुषको दाग लगानेवाले हाव-भाव ही केवल उसमें प्रकट होंगे। इसके कारण भोग-वृत्ति भी भड़क सकती है और अतिशय दृढ़ जागृति न रही तथा भक्तिकी उत्कटता न हुई, तो अधःपतन निश्चित ही है। भारतमें राधा अथवा गोपीके रूपमें कृष्णकी उपासना करनेवाले अनेक भक्त हो चुके हैं। उन सबके जीवनकी जांच करने पर बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे, जो ब्रह्मचारी, वीर अथवा विलासके प्रति उदासीन रह पाये हों। इसके विपरीत, हनुमान, रामदास, तुलसीदास आदिके समान प्रसिद्ध राम-भक्त अपने ब्रह्मचर्य, शौर्य, पुरुषार्थ और वैराग्य आदिके लिए विख्यात हो चुके हैं। गोपीकी भक्ति मीराबाईके जीवनमें जिस प्रकार सुशोभित हुई है, उस प्रकार पुरुषोंमें हो ही नहीं सकती; और संन्यासियोंमें तो और भी कम।

१२. जीवनको उत्सव समझना एक अच्छी स्थिति है। उत्सवके भोग्य वस्तु बन जानेकी भी संभावना रहती

है। जब तक हमने जीवनकी धूप नहीं देखी है, तब तक जीवनको उत्सव मानना हमें सुखकर लगेगा; लेकिन जब छांह हट जाती है, तब भी जीवन उत्सव रूप ही लगे, तब तो उसे उत्सव कहना यथार्थ माना जायेगा। जिस घड़ी दुःख हमें अनिष्ट लगने लगता है, उसी घड़ी हमारा अधःपतन होता है। यह विचार कि भक्ति (भोग) मुक्तिकी विरोधिनी नहीं है — भक्ति और मुक्ति दोनोंको साधनेकी लालसा — जीवनको उत्सव माननेका परिणाम है।

जीवन उत्सव है

१३. अतएव कृष्णकी उपासना कृष्णके समान बननेकी आकांक्षासे होनी चाहिये। कृष्णके समान धर्मनिष्ठ, सत्यप्रिय, अधर्मके वैरी, अन्यायके उच्छेदक, शूर, पराक्रमी, साहसिक, उदार, बलवान, बुद्धिमान, विद्वान, ज्ञानी और योगी होते हुए भी वात्सल्यपूर्ण, निरभिमानी, निस्वार्थी, निःस्पृही, सबको समानताका अधिकार देनेवाले, अत्यन्त शरमीले मनुष्यको भी निस्संकोच करनेवाले, गरीबोंके—दुखियोंके—शरणागतोंके बेली, पापीको भी सुधारनेकी आशा रखनेवाले, अधमका भी उद्धार करनेवाले, हरएककी प्रकृतिका माप लेकर तदनुसार उसकी उन्नतिका क्रम निश्चित करनेवाले, बालकके समान अकृत्रिम कृष्णकी तरह ही हमारा चारित्र्य भी बने, तो हमारी कृष्णोपासना सच्ची बन सकती है। इस स्थितिको साधनेका मार्ग यह है: भूतमात्रके प्रति निस्सीम करुणा, प्रेम, दया और धर्म-कर्मके प्रति सदैव तत्परता, अपनी सर्वांगीण उन्नति करनेकी आकांक्षा और इस सबके लिए सम्पूर्ण पुरुषार्थ करनेकी वृत्ति।